वैदिक गणित
सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 3.0

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

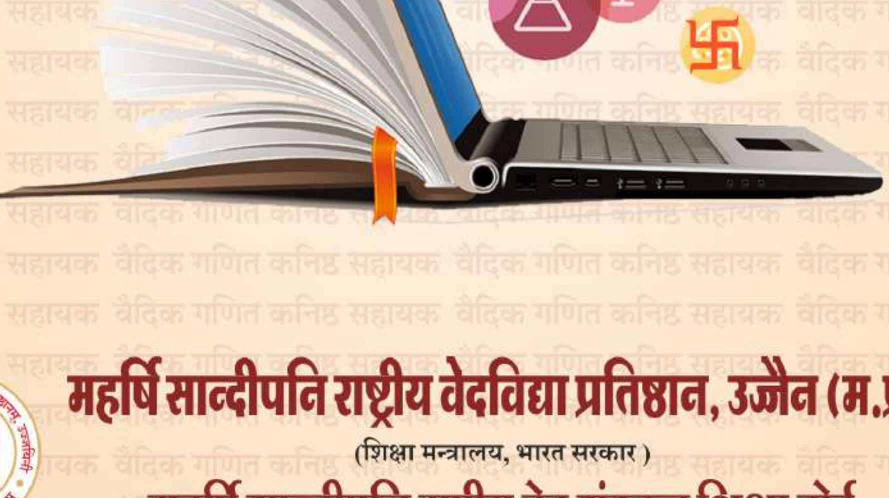

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

वैदिक गणित सहायक

प्रधान सम्पादक

प्रो. विरूपाक्ष वि. जड्डीपाल्

सचिव

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

लेखक

श्री आयुष शुक्ल

एम०एससी० बीएड (शिक्षक वैदिक गणित)

प्रधान संयोजक

डॉ.अनूप कुमार मिश्र

सहायक निदेशक, प्रकाशन एवं शोध अनुभाग

आवरण एवं सज्जा : श्री शैलेन्द्र डोडिया

तकनीकी सहयोग एवं टङ्कण : श्री नरेन्द्र कुमार सोलंकी

© महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जयिनी

ISBN :

मूल्य :

संस्करण : 2024

प्रकाशित प्रति : PDF

प्रकाशक : महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान

(शिक्षामन्त्रालय, भारत सरकार की स्वायत्तशासी संस्था)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Email: msrvvpujn@gmail.com, Web: msrvvp.ac.in

दूरभाष (0734) 2502255, 2502254

भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की पाठ्यचर्या एवं राष्ट्रीय कौशल भारत मिशन का उद्देश्य शिक्षण विकास एवं प्रशिक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों का सर्वांगीण विकास कर रोजगार प्रदान करना है। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन सदैव शैक्षिक नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर रहा है अतः आदर्श वेद विद्यालयों, पाठशालाओं एवं भारत के विद्यालयों में वैदिक कौशल विकास शिक्षण एवं प्रशिक्षण के द्वारा अनेकानेक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षार्थियों को रोजगार के अवसर प्रदान कर रहा है, जिससे शिक्षार्थी प्रशिक्षण के ज्ञानार्जन द्वारा स्वयं को अद्यतन एवं जागृत कर सकेंगे तथा इसके विषय ज्ञान का लाभ अपने दैनन्दिन जीवन के साथ-साथ आजीविका प्राप्त कर राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकेंगे।

वैदिक गणित सहायक पाठ्यपुस्तक में इकाईयों के विषयों को विविध आयामों के साथ सहज एवं प्रभावी तरह से प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी **कोई दोष हों तो हमें सूचित अवश्य** करें क्योंकि हमारा परम उद्देश्य वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर वैदिक ज्ञान को कौशल विकास के माध्यम से जन-जन पहुँचाना है। अतः पाठ्य पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्वानों के समस्त सुझावों का स्वागत है।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन

भूमिका

भारतवर्ष में गणित की समृद्ध परम्परा रही है। इतिहास के अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषियों एवं गणितज्ञों ने इस क्षेत्र में श्रेष्ठ कार्य किया है। परम्परा से ही गणित विद्या को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। उदाहरणार्थ, याजुषज्यौतिषम् का सुस्पष्ट कथन है -

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।

तद्वत् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्द्धनि स्थितम् ॥

(याजुषज्यौतिषम् , 4)

अर्थात् , जिस प्रकार मोरों में शिखा और नागों में मणि का स्थान सबसे ऊपर है, उसी प्रकार सभी वेदाङ्गशास्त्रों मे गणित का स्थान सबसे ऊपर है।

"वैदिक गणित" विद्यार्थियों, शिक्षकों और गणित में रुचि रखने वाले लोगों के लिए एक शिक्षात्मक संसाधन के रूप में काम करता है। यह गणितीय समस्याओं को हल करने के लिए सामान्य तरीकों की तुलना में अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो गणितीय समझ, समस्या समाधान और सुधार के कौशल को बढ़ाती है।

पुरातन ज्ञान के उपयोग से आधुनिक गणित को उन्नत बनाने के उद्देश्य से इस वैदिक गणित की कौशल पाठ्यपुस्तक में वेद के साथ संस्कृत ज्ञान प्रणाली की उपलब्ध गणितीय सङ्कल्पनाओं का समावेश किया गया है।

पाठ्यपुस्तक की भाषा बहुत ही सरल और सहज है जिससे विद्यार्थियों को समझने में सुगमता होगी। पाठ्यपुस्तक में कई पाठ्य बिन्दुओं को संस्कृत ज्ञान प्रणाली के वैदिक प्रमाणों के साथ-साथ ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त ,शुल्बसूत्र, आर्यभट्टीयम्,लीलावती एवं बीजगणितम् आदि ग्रन्थों के सन्दर्भों को भी सम्मिलित किया गया है जिससे वैदिक विद्यार्थी आधुनिक गणित के साथ प्राचीन गणितीय सङ्कल्पनाओं को भी समझने में सक्षम होंगे एवं अपनी भारतीय परम्परा की गरिमा का अनुभव कर सकेंगे। पाठ्यपुस्तक में कुल 08 अध्यायों की रचनाएँ वेद विद्यालयों के वेद भूषण चतुर्थ/ कक्षा 10 वीं के विद्यार्थी को ध्यान में रखकर बनाया गया है। अध्याय 1 में भारतीय गणित का इतिहास का विस्तृत वर्णन है। अध्याय 2 में भाषा में गणित की गणितीय अवधारणाओं को वर्णित किया गया है। अध्याय 3 में भारतीय गणितज्ञों का योगदान । अध्याय 4 में एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र के अनुप्रयोग का वर्णन किया

गया है। अध्याय 5 में निखिलं नवत: चरमं दशत: सूत्र के अनुप्रयोग पर प्रकाश डाला गया है। अध्याय 6 वेदी मापन का गणित (स्मार्त यज्ञ) का वर्णन किया गया है। अध्याय 7 में आर्यभट्टीयम् गीतिकापाद -1 वर्णन किया गया है। अध्याय 8 में भास्कराचार्य जी द्वारा रचित लीलावती गणित का परिचय दिया गया है।

वैदिक गणित की यह कौशल पाठ्यपुस्तक वैदिक गणित के ज्ञान को संरक्षित, प्रोत्साहित और प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगी, साथ ही भारतवर्ष की गणितीय शिक्षा और सांस्कृतिक विरासत का समृद्धिकरण में सहायक होगी।

पाठ्यपुस्तक में उपलब्ध वैदिक गणितीय सङ्कल्पनाओं को समझकर प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने सहायता मिलेगी।

लेखक पाठ्यपुस्तक के त्रुटि सुधार हेतु प्रेषित सकारात्मक सुझाव के लिए आपका कृतज्ञ होगा।

आयुष शुक्ल

विषयानुक्रमणिका

क्र. सं.	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
	भारतीय गणित का इतिहास	2
	भाषा में गणित	17
	भारतीय गणितज्ञों का योगदान	31
	एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र के अनुप्रयोग	42
	निखिलं नवत: चरमं दशत: सूत्र के अनुप्रयोग	49
	वेदी मापन का गणित (स्मार्त यज्ञ)-	55
	आर्यभट्टीयम् गीतिकापाद -1	60
	लीलावती गणित	66

अध्याय : 01

भारतीय गणित का इतिहास

रूपरेखा: प्राचीन भारतीय गणित का चिन्तन, प्राचीन भारतीय गणित का अङ्कगणित, बीजगणित एवं रेखा गणित का विकास,

प्राचीन भारतीय गणित का चिन्तन :

पृथिवी पर जो अकेला देखा गया, उसे एक और एकाकी कहा गया। एक वेद मन्त्र में उल्लेखित है कि आकाश में दिन के समय में सूर्य अकेला विचरण करता है। उसके चले जाने पर अकेला चन्द्रमा ही चाँदनी बिखेरता है। (**सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः** -यजुर्वेद 23.10) एक के साथ सदा रहने वाले के लिए द्वन्द्व का प्रयोग हुआ। प्रारम्भ में एक साथ देखे गए युगल को द्वि से सूचित किया गया। सूर्याचन्द्रमसौ (सूरज और चाँद) द्यावापृथिव्यौ (धुलोक और पृथिवी लोक) इस प्रकार के युगल के कई उदाहरण मिलते हैं।

इसके आगे की वस्तुओं के लिए बहुवचन शब्दों का प्रयोग तथा इनकी गणना के लिए 'त्रि' इत्यादि शब्दों का विकास हुआ। षड् वेदाङ्गो के अन्तर्गत 'निरुक्त' में इन सभी संख्याओं के मूल अर्थ बताये गये हैं। जिनके माध्यम से लोगों को गणना करना आ गया तथा इस विशेष संक्रिया को अलग से गणन अथवा गणना नाम दिया गया। वैदिक युग में इस प्रकार की संक्रिया अलग शास्त्र का रूप ले चुकी थी तथा इस संक्रिया को करने वाले के लिए विशिष्ट नाम 'गणक' अलग से प्रचलित हो गया था। यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा है कि गाँव में पानी की इकाई गिनने वाले सरपंच को 'गणक' के रुप में प्राप्त करो । (याद से शाबल्यां ग्रामण्यं गणकम्दू यजुर्वेद 30.20)। आगे चल कर गणित के विद्वान् के लिए यह नाम खूब प्रसिद्ध हुआ। वराहमिहिर और भास्कराचार्य के ग्रन्थों में इस नाम का उपयोग करते हुए गणित के विद्वान् की भरपूर प्रशंसा की गई है।

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जित च ।

समा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्रा ।।

(सिद्धान्त शिरोमणि, गोलाध्याय)

अर्थात् जैसे घृत के बिना व्यंजन, बिना राजा के राज्य, तथा अच्छे वक्ता के बिना सभा महत्त्वहीन होती है, ठीक उसी प्रकार खगोल तथा गणित में एक दूसरे से अनभिज्ञ पुरुष उसी प्रकार महत्त्वहीन है। शास्त्र के रूप में गणित का सर्वप्रथम प्रयोग 'वेदाङ्गज्योतिष' में प्राप्त होता है:

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धिन स्थितम् ।। (वेदाङ्गज्योतिष)

अर्थात् जिस प्रकार मोर में शिखा तथा नागों की मणि उनके मस्तक पर सुशोभित होती है, उसी प्रकार गणित भी सभी वेदाङ्ग शास्त्रों में सर्वोच्च स्थान पर है।

छान्दोग्य उपनिषद् में नारद और सनत्कुमार की एक कहानी से पता चलता है कि उस समय गणित का नाम राशि विद्या था। **(स होवाच,... पित्र्यं राशि ... देवविद्या भगवोऽध्येमि छान्दोग्य उपनिषद्** 7.1.2)

गणना का काम तथा इसका अनुक्रम वैदिक युग से प्रारम्भ हो चुका था। 1 से 10 तक के लिए मौलिक शब्दों की खोज की जा चुकी थी। वास्तव में ये शब्द कितने पुराने हैं, इनका अन्दाजा लगाना आसान नहीं हैं। ये शब्द भारोपीय युग के माने जाते हैं। अर्थात् भारत से लेकर यूरोप तक रहने वालों के प्राचीनतम् पूर्वज जब एक साथ रहा करते थे, तब उन्होंने इन शब्दों का विकास किया था। ऐसा मानने का कारण यह है कि भारत से यूरोप तक की भाषाओं में वैदिक 1 से 10 तक के शब्दों के समानान्तर शब्द प्राप्त होते हैं।

यह उल्लेख बहुत रोचक है कि इन संख्याओं से गिनने का सबसे पहला आधार उँगलियों बनी थी। ये उँगलियों मनुष्य के पास थी, तथा सबके लिए सुलभ थीं, इसलिए इन्हें गिनने के लिए 10 तक के संख्या शब्दों का आविष्कार हुआ हो, इसमें क्या आश्चर्य हो सकता है। इस व्याख्या से इस प्रश्न का भी समाधान होता है कि आखिर 10 तक के लिए ही मौलिक संख्या शब्दों का आविष्कार क्यों हुआ। हम जानते हैं कि भारत से यूरोप तक की भाषाओं में 10 से आगे की संख्याएँ इन्हीं संख्याओं का योग या गुणन करके बनाई गई हैं।

10 तक की संख्याओं के लिए उँगलियाँ आधार बनी, इसका प्रमाण उपलब्ध है। वेद के एक रोचक मन्त्र में उँगलियों की अनेक विशेषताओं के आधार पर अवनि, कक्ष्या आदि अनेक नाम दिये हैं तथा इन सबके साथ दश संख्या का उपयोग किया है।

दशावनिभ्यों देश कक्ष्येभ्यो दश योक्तेभ्यो दश योजनेभ्यः ।

दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहदभ्यः ।। ऋग्वेद 10.94.7

इसमें कहा है कि इन अनेक विशेषताओं वाली 10 उँगलियों से सोम निचोड़ने वाले पत्थर की स्तुति करें।

भाषाविज्ञान के विद्वानों का अनुमान है कि उँगली के लिए इंग्लिश में finger शब्द संस्कृत के पञ्च से निकला है। इससे यूरोप में एक हाथ की पोंच उँगलियों को आधार बना कर इस शब्द का प्रचलन हुआ था।

वैदिक युग में 3 लोक, 4 वेद, 5 महाभूत, 6 रस, 7 लोक, 8 धातु 9 रत्न, 10 दिशाओं को गिनने के लिए विशेष रूप से संख्याओं का उपयोग हुआ। इस प्रकार अमूर्त (abstract) संख्याओं के आधार पर दुनिया के देखे सुने जाने वाले मूर्त पदार्थों को जानने समझने की कोशिश शुरु हुई। इससे गिनती सम्भव हो सकी। हर वस्तु की विशेषता के अलावा संख्या के माध्यम से एक नई पहचान मिल सकी। आगे के युगों में संख्याओं द्वारा मिलने वाली पहचान को अधिक से अधिक अच्छे रूप में समझा जा सका।

वास्तव में गणित शास्त्र में संख्याओं का उपयोग मानव जाति के लिए एक बड़े वरदान के रूप में सामने आया। मनोविज्ञान के विद्वान बताते है कि किसी भूलभुलैयाँ वाले रास्तों के बीच किस प्रकार खरगोश बाहर नहीं आ सका, परन्तु मनुष्य 123 आदि संख्याओं के चिह्न लगाकर तुरन्त ही बाहर आने में सफल हो सका। आज इन संख्याओं द्वारा मिली पहचान के असंख्य उपयोग ज्ञात हो चुके हैं।

मानव ने गणित की इन संख्याओं का उपयोग करते हुए अनजाने ही सापेक्षता का उपयोग करना सीख लिया। उसने जान लिया कि तीन संख्याओं के पश्चात् ही, उन तीन के सापेक्ष ही अगला पिण्ड चार है। कोई पिण्ड हर दशा में वहीं पिण्ड है। पर यह अलग-अलग संख्याओं के सापेक्ष तीन, चार या पाँच कुछ भी हो सकता है।

आगे चलकर इन संख्याओं के आधार पर गणित की संक्रियाओं का असीम विकास हुआ। इस विकास का कारण यह विशेषता थी कि इन संक्रियाओं से प्राप्त परिणाम बाहरी दुनिया में सदा सही और सटीक होते है।

प्राचीन भारतीय गणित का विस्तार तथा मौलिक उपयोग :

गणित में मौलिक संख्याओं के द्वारा वस्तुओं की गणना की संक्रिया के पश्चात् हर युग में उसका विस्तार होता रहा। पूर्व में बताया गया है कि उँगलियों को गिनने के लिए संख्याओं के मौलिक शब्द एक से दस तक ही हैं। इसके पश्चात् की अतिविस्तृत संख्याएं इन्हीं मौलिक संख्याओं के योग और गुणन से निर्मित हुई हैं। इन आगे की संख्याओं के नाम और लेखन से भी यही तथ्य प्रकट होता है।

संस्कृत में दश के पश्चात एकादश, द्वादश आदि अथवा विंशति, के पश्चात् एकविंशति, द्वाविंशति आदि संख्याओं के नाम कमशः 1+20 तथा 2+20 आदि योग की पद्धति से निर्मित हुए हैं। इंग्लिश में भी twenty one, twenty two आदि के लिए 20+1 तथा 20+2 आदि योग की पद्धति का उपयोग हुआ।

इसके साथ ही 20, 30 आदि दाशमिक संख्याओं के नामकरण के लिए गुणन की पद्धति का उपयोग किया गया। विंशति (20), त्रिंशत् (30) इत्यादि शब्दों के निर्वचन से ज्ञात होता है कि इनका मौलिक अर्थ कमशः 2X10=20, 3 x10=30 है। इसके पश्चात् शतम् (=100) भारत से लेकर यूरोप तक सबसे प्रसिद्ध संख्याओं में एक है। आधुनिक भाषा विज्ञान के विद्वानों ने भारोपीय भाषाओं में संख्याओं के एक वर्ग के मे प्रतिनिधि शब्द के रुप में सर्वसम्मति से इसे स्वीकार किया है।
इसमें 'शतम्' के समानान्तर शब्द इन भाषाओं में समान रुप से प्राप्त होते हैं।

'शतम्' से आगे की संख्याओं के बहुत से शब्द भी भारत की तद्भव भाषाओं में कुछ परिवर्तन के साथ अपना लिए गए हैं। वेद में कहे गए अयुत, नियुत जैसे कुछ शब्द छोड़े भी गए हैं। संस्कृत में स्वीकृत प्राकृत शब्दों से आज की हिन्दी आदि भाषाओं में कुछ शब्द विकसित हुए हैं। संस्कृत में मेघ अर्थ में 'अम्बुद' शब्द है। उसके प्राकृत रूप 'अर्बुद' को संस्कृत शब्दों में स्वीकार कर लिया गया। इससे ही हिन्दी में 'अरब' संख्या विकसित हुई है। इसका 'अरब' देश से कोई संबंध नहीं है।

भारतीय संख्या लेखन में शतम् तथा इससे आगे की संख्याओं को दशगुणित रुप में प्रकट करने की परम्परा रही है। यह परम्परा शब्दों के निर्वचन में छिपी हुई हैं। शतम का निर्वचन इस प्रकार है:

'शतम्' से आगे की संख्याओं के बहुत से शब्द भी भारत की तद्भव भाषाओं में कुछ परिवर्तन के साथ अपना लिए गए हैं। वेद में कहे गए अयुत, नियुत जैसे कुछ शब्द छोड़े भी गए हैं। बौद्ध साहित्य में प्रचलित 'लक्ष' आदि कुछ संख्याओं को अपनाया गया हैं। संस्कृत में स्वीकृत प्राकृत शब्दों से आज की हिन्दी आदि भाषाओं में कुछ शब्द विकसित हुए हैं। संस्कृत में मेघ अर्थ में 'अम्बुद' शब्द है। उसके प्राकृत रूप 'अर्बुद' को संस्कृत शब्दों में स्वीकार कर लिया गया। इससे ही हिन्दी में 'अरब' संख्या विकसित हुई है। इसका 'अरब' देश से कोई संबंध नहीं है।

भारतीय संख्या लेखन में शतम् तथा इससे आगे की संख्याओं को दशगुणित रुप में प्रकट करने की परम्परा रही है। यह परम्परा शब्दों के निर्वचन में छिपी हुई हैं। शतम का निर्वचन इस प्रकार है: शतं दश दशतः निरुक्त। अर्थात

शतम् = 10 x 10

सहस्त्रम् (10x10)X10

आधुनिक संख्या लेखन में = सौ (hundred) = 10=10x10,

हजार (Thousand) = 10 = 10 x 10 x 10

यह कितना सुखद अचरजमरा तथ्य है कि आधुनिक वैज्ञानिक संख्या लेखन की रुपरेखा प्राचीन भारतीय लेखन में प्राप्त है। भारतीय मनीषा ने इस रुपरेखा को शब्दों में समाविष्ट कर दिया है, ताकि इसे कोई बदल न सके तथा भूल न सके। शब्द निर्वचन में इस प्रकिया के सुरक्षित होने से आज हम निस्सन्दिग्ध रूप से कह सकते है कि प्राचीन युग में संख्या लेखन की वैज्ञानिक प्रकिया विद्यमान थी।

यजुर्वेद में इस प्रक्रिया को सुरक्षित रखते हुए क्रमश दशगुणित संख्या का नाम रखते हुए अन्तिम सबसे बड़ी संख्या परार्ध का उल्लेख किया है, जो कि आधुनिक संख्या लेखन में 10" के समतुल्य है। **एका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्त्रायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च - माघ यं चान्तश्च परार्धश्चौता में अग्न इष्टका धनव सन्त्वत्रामुष्मिल्लोके।** (यजुर्वेद 17.2) यह उल्लेख बहुत रोचक है कि वेद में इतनी बड़ी संख्या का उपयोग गायों तथा यज्ञवेदी की ईंटों को गिनने के लिए हुआ है। वहाँ कहा है कि इस लोक में इतनी गाएँ सुरक्षित रहें। यह मानने का पर्याप्त आधार है कि मोहंजोदारो की सभ्यता में पक्के मकान, नालियों इत्यादि बनाने के लिए ईंटों का प्रयोग होता था। पर वेद में तो यज्ञवेदि की ईंटों को गिनने के

लिए इतनी बड़ी संख्या का उपयोग हुआ है। इसी प्रकार इतनी बड़ी संख्या में गायों की प्रार्थना से हर घर में गायों के उपयोग की सूचना मिलती है।

शताय स्वाहा सहस्राय स्वाहाऽयुताय स्वाहा नियुताय स्वाहा प्रयुताय स्वाहा-ऽर्बुदाय स्वाहा न्यर्बुदाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहाऽन्ताय स्वाहा परार्धाय स्वाहोषसे स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहोदिताय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा।

(तैत्तिरीय संहिता- 7/2/20)

तैत्तिरीय संहिता में तो यजुर्वेद की परार्ध संख्या के पश्चात् उषस्, उद्यत्, उदित, सवर्ग, पश्चात् उषस्, उद्यत्, उदित, सवर्ग तथा सबसे अन्त में 'लोक' नामक सबसे बड़ी संख्या का वर्णन है, जो 10 के समतुल्य है।

इतने प्राचीनतम युग में इतनी बड़ी संख्याओं का लेखन किस प्रकार होता था, यह अनुमान का विषय है, क्योंकि उस समय के लेखन का स्वरूप उपलब्ध नहीं है। मेगस्थनीज ने मौर्य युग (ईसा पूर्व चौथी शताब्दी) में सड़कों पर मील के पत्थर का वर्णन किया है। उन पत्थरों में अवश्य ही संख्या लेखन रहा होगा। कौटिल्य अर्थशास्त्र में गणनाद्दपुस्तक में कर्मचारियों के वेतन, भत्ते आदि की गणना रखने का उल्लेख है। उसमें उस विभाग के संख्यायक (accountant), लेखक (Clerk) आदि का भी वर्णन है। स्पष्टतः इनमें बड़ी-बड़ी संख्याएँ लिखी जाती होंगी। ब्राह्मी लिपि में संख्या लेखन होता था। इस लिपि में उपलब्ध संख्या लेखन से पूर्व इसके उपयोग का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि कोई भी लेखन तत्काल उत्पन्न होकर प्रचारित नहीं हो सकता। इसकी प्रतिष्ठा और प्रचार में शताब्दियों लगती हैं।

संख्या शब्दों में स्थानीय मान के उपयोग का संकेत अतिप्राचीन ग्रन्थ निरुक्त में 'दश' के निर्वचन में प्राप्त है। (दश दस्ताद्दनिरुक्त 3.10) योग सूत्र में इसका स्पष्ट उल्लेख है। वहाँ कहा कि एक ही रेखा किसी विशिष्ट स्थान में 100, अन्य स्थान में 10 तथा उससे अन्य स्थान में 1 का बोध कराती है।

(यथैका रेखा शत स्थाने शतं दश स्थाने दशैका च एक स्थाने योग सूत्र 3.13 पर व्यास भाष्य)

इनके लिए संख्या शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण 7.31.43 में उपलब्ध हुआ है। वहीं कहा है कि इन असंख्यों की संख्या क्या है। (कैतासामसंख्याताना संख्या -शतब्राह्मण) इससे प्रकट है कि वे बड़ी-बड़ी

संख्याओं की भी गिनने का सामर्थय रखत थे। आगे चलकर इनके लिए 'अंक' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ क्योंकि ये किसी भी वस्तुत को चिह्नित करने का सामर्थ्य रखते थें। भारतीय दर्शन में संख्याओं की इस विशेषता का विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्राचीन भारत में अङ्कगणित का विकास :

जिस गणित में अङ्कक से सम्बन्धित विशेष संक्रियाएँ हो, उसे अङ्क गणित कहा जाता है। पिछले परिच्छेद में बताया गया है कि अनेक संख्या शब्द योग तथा गुणन की संक्रियाओं के आधार पर विकसित हुए हैं। **द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्** (ऋग्वेद 1.164.48) इस मन्त्र में द्वादश शब्द 2+10=12 अर्थ रखता है। **सप्तशतानि विशतिश्च तख्यु** (ऋग्वेद 1.164.11) यहाँ विंशति शब्द 2x10 = 20 अर्थ वाला है। इस सम्पूर्ण पाद 700+20=720, यहाँ सैकड़ा संख्या के साथ जोड़ की संक्रिया की गई है।

वेद में प्राप्त एकोनविंशति' शब्द व्यवकलन या घटाने की संक्रिया को प्रकट करता है। इसका अर्थ एकोन एक कम, विंशति 20 है। इस प्रकार यह शब्द 20-1=19 इस संक्रिया से निष्पन्न है। इस शब्द से हिन्दी का 'उन्नीस' शब्द विकसित है

यजुर्वेद के एक रोचक मन्त्र **चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादशयज्ञेन .... कल्पन्ताम्॥** (यजुर्वेद 18.25) में 4 संख्या को 1,2,3, ... से गुणित करते हुए उनका नाम सहित उल्लेख किया गया है। इस प्रकार वहाँ समान्तर श्रेणी का विकास किया गया है। इस मन्त्र में 4-4 के समूह के पात्र यज्ञ से जुडे, ऐसा कहा गया है। पञ्चविंश ब्राह्मण में 12, 24, 48, 96 के कम से 393216 तक कहते हुए गुणोत्तर श्रेणी का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वेद के ही एक मन्त्र में सम संख्याएँ तथा एक अन्य मन्त्र में विषम संख्याओं का उल्लेख किया गया है। (**एका च मे तिस्रश्च मे तिस्र श्च मे पञ्च च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥......** यजुर्वेद 8.24) इसके साथ ही वेद के अनेक शब्दों से भिन्न संख्याएँ तथा उन पर योग आदि की 1/4 संक्रियाएँ सूचित की गई हैं। जैसे वहाँ पाद है। क्योंकि गाय के चार पैर होते हैं। उन्हें यदि समूह में 1 माना जावे तो उस सम्पूर्ण के सापेक्ष 1 पैर 1/4 के समतुल्य है। इसी प्रकार 1/8 शफ है, क्योंकि गाय के 8 खुर होते हैं। उन खुरों के 1 समूह के 1/8 सापेक्ष 1 खुर है। वहाँ इन्हीं कारणों से कुष्ठ 1/12 शब्द अर्थ में प्राप्त है।

इन शब्दों पर अनेक संक्रियाओं द्वारा पुनः अनेक शब्द निर्मित हुए हैं। जैसे पाद के आधार पर = 1/4

सपाद = 1 + 1/4 = 5/4 (चौथाई सहित एक)।

पादोन (कौटिल्य अर्थशास्त्र), हिन्दी पौना = 1 - 1/4 = 3/4 (चौथाई कम एक)

पारिभाषिक शब्दों के में प्राप्त शब्द अन्तर्गत अर्ध = 1/2 है। इस पर गणितीय संक्रिया द्वारा अथर्ववेद अध्यर्ध (आधा सहित एक) = 1 + 1/2 इसके समानान्तर द्वयर्ध (डेढ़) = 2-1/2 (दो से आधा कम)

प्राचीन भारतीय गणित के अन्तर्गत शुल्बसूत्र को भी सम्मिलित किया जाता है। वैदिक युग में 3000 वर्ष ईसा पूर्व में बौधायन, कात्यायन आदि अनेक ऋषियों द्वारा इनकी रचना की गई थी। इनके नाम से स्पष्ट है कि ये सूत्र पद्धति में रचे गए थे। इस शैली में संक्षेप शब्दों में अधिक विषय की गद्य रचना की जाती थी। शुल्ब का अर्थ रस्सी होता था। आजकल कारीगरों द्वारा नापने के लिए टेप की तरह रस्सी का प्रयोग होता था। गणित में इसका सर्वाधिक उपयोग होने से इसका नाम शुल्व गणित रखा गया था।

शुल्वसूत्र की रचना का प्रमुख उद्देश्य यज्ञ में प्रयोग की जाने वाली अनेक प्रकार की वेदियों का निर्माण करना था। उस समय अनेक प्रकार की कामना पूर्ति के लिए ज्योतिष्टोम आदि बड़े बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता था। इसके लिए अनेक प्रकार की एवं विविध आकार की वेदियों का निर्माण किया जाता था। शुल्व सूत्रों में इनके लिए अंक गणित, रेखा गणित से सम्बन्धित अनेक विधियों, सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। इस प्रकार भारत में गणित का अवतरण तथा विकास मूलतः यज्ञ कार्यों के लिए हुआ था।

आपने ऊपर देखा है कि वेद में गणित के शब्दों का उल्लेख है। शुल्व गणित में इससे आगे बढ़कर गणित की संक्रियाओं तथा इनके आधार पर अनेक प्रकार की वेदी निर्माण का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ अंक गणित की ऐसी कुछ विधियों का वर्णन प्रस्तुत है:

गणित में माना है कि किसी संख्या को उसी समान संख्या से गुणित करने पर प्राप्त परिणाम 'वर्ग' कहा जाता है। (समद्विघातः कृतिः) । तदनुसार -

$2^2 = 2 \times 2 = 4$ वर्ग हस्त (द्वाभ्यां चत्वारि)

प्रमाण तृतीयेन वर्धयेत् तच्च चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन । (बौधायन शुल्बसूत्र 1.2.61)

$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3}$ प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत् ।

$+ \frac{1}{3.4}$ तच्च चतुर्थेन

$-\frac{1}{3.4.34}$आत्मचतुस्त्रिंशोनेन

इस संक्रिया को एक साथ लिखने पर यह परिणाम प्राप्त होता है-

$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3.4} - \frac{1}{3.4.34}$

= 17/12 - 1/408 = 577/408 = 1.41421

इस संक्रिया को आगे बढ़ाने पर 3 का वर्गमूल इस प्रकार प्राप्त होता है -

$\sqrt{3} = 1 + \frac{2}{3} + \frac{1}{3.5} - \frac{1}{3.5.52}$

= 26/15 - 1/780 = 1351/780 = 1.73205

यह कितना सुखद् विस्मयकारी है कि आधुनिक गणित में भी 2 तथा 3 के वर्गमूल का 4 दशमलव संख्या तक यही मान प्राप्त होता है। शुल्बसूत्र की इस संक्रिया की सार्वत्रिक विधि तथा तार्किकता अभी तक ज्ञात नहीं हो पाई है। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि शुल्बसूत्र के ऋषि इसे ज्ञात कर चुके थे।

प्राचीन भारत में रेखा गणित एवं बीज गणित का विकास

प्राचीन भारतीय गणित में रेखा गणित का सर्वाधिक विकास हुआ था। उस समय तत्वदर्शी ऋषि प्रकृति की अनेक आकृतियों से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने उन आकृतियों को यज्ञवेदियों, यज्ञपात्रों में अनुकृत करने का प्रयास किया। इस क्रम में उन आकृतियों के नाम, पहचान, उनका मापन, उन्हें द्विगुणित, त्रिगुणित इत्यादि करने के सूत्र विकसित किये गये ।

इस प्रकार किसी पत्थर या लकड़ी की चतुर्भुज आकृति को चतुरश्र नाम दिया गया इसका अर्थ 'चार कोनों वाला' यह है। यह शब्द इस आकृति की सही पहचान बताता है। इसके दो विभाजन विकसित किये गये। समान भुजाओं से बनने वाले को 'समचतुरस्त्र' कहा गया। इसे आजकल वर्ग कहते हैं। दो असमान भुजाओं से बनने वाले को 'आयतचतुरस्त्र' कहा गया। आजकल इस के एक हिस्से 'आयत' शब्द के प्रयोग का प्रचलित है।

वर्ग या आयत का क्षेत्रफल: शुल्बसूत्र में कहा है कि वर्ग या आयत जितने पद या सेमी लम्बा तथा चौड़ा हो, उतनी रेखाएं एक-एक पद या सेमी की दूरी पर खींचें। इससे एक एक वर्ग पद (या आधुनिक 1 सेमी) के मानक मात्रक प्राप्त होंगे। उन्हें जोड़ने पर जितने मानक मात्रक प्राप्त हों, उतने वर्ग क्षेत्रफल का यह वर्ग या आयत होगा। **(यावत्प्रमाणा रज्जुर्भवति तावतस्तावन्तो वर्गा भवति तान्त्समत्स्येत्। (कात्यायन शुल्बसूत्र कण्डिका 3 -7)**

वर्ग के विकर्ण पर बनने वाला वर्ग: आगे कहा गया है किसी समचतुरस्त्र अर्थात वर्ग (a) के विकर्ण (diagonal) पर बनने वाला वर्ग अपने पिछले वर्ग (a) के क्षेत्रफल से दुगुने क्षेत्रफल वाला होता है। (**समचतुरस्त्रस्याक्ष्याया रज्जुर्दिस्तावती भूमिं करोति ।** (बौधायन शुल्बसूत्र 1.45) इसका कारण यह बताया गया है कि इस वर्ग (a) पर बनने वाले विकर्ण का प्रमाण a गणित द्विकरणी या 2 का वर्गमूल अर्थात $a \times \sqrt{2}$ होता है। इसे इस प्रकार सिद्ध करते है :

वर्ग जिसकी भुजा ‘a’ है, उस का विकर्ण $\sqrt{a^2 + a^2}$

$$\sqrt{2a^2} = \sqrt{a^2 \times 2} = a\sqrt{2}$$

इस प्रकार यदि यह विकर्ण $a\sqrt{2}$ है तो इस पर इसी प्रमाण की भुजाओं द्वारा निर्मित वर्ग का क्षेत्रफल पिछले a वर्ग से दुगुना होगा ।

समकोण त्रिभुज के त्रिक-

a	b	c
3	4	5
5	12	13
7	24	25

(त्रिक चतुष्कयोः पञ्चिकाऽक्ष्णया रज्जु आपस्तम्ब शुल्बसूत्र 5.0)

इस नियम के अनुसार बनने वाले त्रिक में c से b सदा 1 कम होता है। इन्हें द्विगुणित तथा त्रिगुणित करने पर भी त्रिक प्राप्त किये जा सकते हैं। द्विगुणित करने पर से b सदा 2 कम तथा त्रिगुणित करने पर यह 3 कम होता है। इन नियमों के आधार पर आगे चलकर इस गणित का बहुत विकास हुआ ।

वृत्ताकार और अण्डाकार प्राचीन भारतीय गणित में वृत्ताकार (circular) और अण्डाकार (elliptical figure) पिण्डों के नियमों का भी उल्लेख हुआ है। वेद में सूर्य के आकार को वृत्त नाम दिया गया तथा इसे चक्र के समान बताया है। **चक्र न वृत्त व्यतीरवीविपत् (ऋग्वेद** 1.155.6) वेद के एक आलंकारिक मन्त्र में कहा है कि सूर्य के इस चक्र की बदौलत सूर्य आकाश में तीव्र गति से परिभ्रमण करता है। वास्तव में सूर्य के वृत्ताकार तथा इसके फलस्वरूप इसकी तीव्र गति को देखकर ही लोगों ने

बैलगाडी ता के लिए चक्र का आविष्कार किया, जो कि दुनिया की बड़ी-बड़ी उपलब्धियों में से को एक है। वेद में कालचक्र तथा पार्थिव चक्र को एक समान मानते हुए दोनों का एक ही समान के विभाजन बताया है। **द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत्। तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिता षष्टिर्न चलाचलासः । ऋग्वेद 1.164.48**

कालचक्र	**पार्थिव चक**
12 महीने का 1 वर्ष	12 प्रधि का 1 वृत्ताकार
30 दिन का 1 महीना	30 अंश की 1 प्रधि
अतः 30 x 12=360 दिन का 1 वर्ष	अतः 30x12=360 अंश का 1 वृत्त

उक्त वेद मन्त्र में वर्णित 360 अंश का 1 वृत्त बनने की अवधारण वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में सर्वमान्य है।

17 वृत्त के समतुल्य क्षेत्रफल वाला वर्गः शुल्बसूत्र में किसी वृत्त को समतुल्य क्षेत्रफल वाले वर्ग में तथा इसके व्युत्क्रम किसी वर्ग को समतुल्य क्षेत्रफल वाले वृत्त में बदलने का नियम बताया है, जो कि काफी सीमा तक सहीं उतरता है। उनके इस नियम से वृत्त के क्षेत्रफल तथा वर्ग के क्षेत्रफल के सूत्र का संकेत प्राप्त होता है तथा इस क्रम से 1 का मान ज्ञात होता है।

मण्डलं चतुरसं चिकीर्षन् विष्कम्भं पञ्चदश भागान् कृत्वा द्वावुद्धरेत् ।
त्रयोदशावशिष्यन्ते । आपस्तम्ब शुल्बसूत्र 3.6

इससे यह माना गया है कि किसी वृत्त के विष्कम्भ अर्थात् व्यास के 15 भाग करने पर ब दोनों तरफ एक एक भाग छोड़कर व्यास प्रमाण रेखा द्वारा वर्ग बनाने से उस वृत्त के नि क्षेत्रफल के समतुल्य वर्ग क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस प्रकार :

वृत्त का व्यास d होने पर समतुल्य वर्ग क्षेत्रफल की भुजा 13/15 * d क अथवा 13/15 * 2r जहाँ, वृत्त की त्रिज्या r है।

अब वृत्त के क्षेत्रफल तथा वर्ग के क्षेत्रफल के सूत्र अनुसार :

$$(r \times \frac{26}{152})^2 = \frac{676}{225} \ x \, r^2 = \frac{676}{900} = 0.751$$

1 व्यास होने पर वृत्त का क्षेत्रफल $\pi \times \frac{1}{2}^2$ = समतुल्य वर्ग का क्षेत्रफल = $\frac{13}{15}^2$

अतः π = 3.004 इस प्रकार 1 व्यास होने पर वृत्त का क्षेत्रफल 3.004× 1/4 = 0.751

समतुल्य वर्ग का क्षेत्रफल: इस प्रकार शुल्बसूत्र का यह अभिमत सिद्ध है कि 3.004 x r^2 = वृत्त का क्षेत्रफल = $(r \times \frac{26}{152})^2$ वर्ग क्षेत्रफल होता है। यह आकलन वास्तविकता के बहुत समीप है। वास्तविकता के बहुत समीप है।

बीज गणित :- प्राचीन भारतीय गणित में बीज गणित का अधिक विस्तार नहीं है। बीज गणित में किसी व्यक्त राशि के द्वारा अव्यक्त राशियों का पता लगाया जाता है। विद्वानों ने इसके जो उदाहरण खोजे हैं, उसे 'ज्यामितीय बीजगणित' का नाम दिया है क्योंकि रेखा गणित के अन्तर्गत इस प्रकार की संक्रिया देखी गई है। तैत्तिरीय संहिता (6.2.4.5) में इसका एक उदाहरण प्राप्त है:

$$36^2 + 15^2 = 39^2$$

इस परिच्छेद में समकोण त्रिभुज के जो त्रिक के उदाहरण दिये हैं, वे सभी इसके अन्तर्गत हैं। शुल्बसूत्र में इन त्रिकों के प्राप्त करने के नियम के संकेत दिये हैं। उनसे इस प्रकार के समीकरणों को हल किया जा सकता है:

$$x^2 + y^2 = a^2$$

इस स्थिति में ये ज्यामितीय बीजगणित के उदाहरण बन जाते है।

1.2 बीजगणित का सामान्य परिचय (वैदिक से आधुनिक युग)

भारतीय संस्कृति को महानता के शिखर पर ले जाने में भारतीय गणित-परंपरा का महत्वपूर्ण योगदान है। महान गणितज्ञ भास्कराचार्य द्वितीय ने कहा है कि मंदबुद्धि व्यक्ति जिन प्रश्नों को अंकगणित की सहायता से हल नहीं कर सकता उन प्रश्नों को बीजगणित की सहायता से अति सरलता पूर्वक हल किया जा सकता है। अन्य शब्दों में कहा जाए तो बीजगणित में अंकगणित की जटिल समस्याओं का हल आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। बीजगणित में विशाल अंकों वाली संख्या को बीज रूप में मान कर जटिल प्रश्नों के हल निकल सकते हैं। बीज के रूप में अंक न हो कर वर्ण/अक्षर होते हैं और उनके साथ अंकों के समान ही व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार बीजगणित से साधारणतया तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें अंकों के स्थान पर अक्षरों का प्रयोग होता है, जबकि गणितीय प्रक्रिया के चिह्न समान रहते हैं।

उदाहरणार्थ यदि किसी घन की भुजा 'क' है, तो घन का आयतन व्यक्त करने की बीजगणितीय विधि निम्न प्रकार होगी क क क क (क का घन)। यदि किसी घनाभ की भुजाएँ क्रमशः क, ख, ग हैं तो घन का आयतन व्यक्त करने की बीजगणितीय विधि निम्न प्रकार होगी क ख ग कखग। इसी प्रकार यदि किसी वर्ग की एक भुजा 'क' है तो उसका क्षेत्रफल ज्ञात करने की बीजगणितीय विधि होगी - क × क क²। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि वर्ग की लंबाई तथा चौड़ाई समान होती है। यदि एक भुजा की लंबाई 'क' है, तो दूसरी भुजा की लंबाई भी 'क' होगी। क्षेत्रफल का सामान्य सूत्र लंबाई तथा चौड़ाई के गुणनफल से प्राप्त होगा।

बीजगणित को प्राचीन विद्वान अव्यक्त गणित कहते हैं। बीजगणित को बीजीय पद-समूहों का विज्ञान भी कहा जाता है। अंकगणित के प्रारम्भ में मानव ने स्थूल वस्तुओं को आधार बनाकर संख्या प्रणाली तथा अनेक संकल्पनाओं का विकास किया। अंकगणित की संख्या प्रणाली को आधार बनाकर जब संख्याओं के स्थान पर अक्षरों या पदों या संकेतों का प्रयोग किया जाने लगा तो बीजगणित का जन्म हुआ। अव्यक्त गणित का अर्थ है कि अव्यक्त (अज्ञात) राशियों द्वारा गणित को समझना है। बीजगणित के प्रादुर्भाव से राशियों के दो भेद हो गए। जिनमें से एक व्यक्त राशियाँ, जैसे – 1, 2, 3, 4..... आदि अंकगणितीय संख्यायें हुई, वहीं दूसरी क, ख, ग.... आदि अव्यक्तराशियाँ। इन क, ख, ग, आदि अव्यक्तराशियों का मूल्य, मान स्वयं स्पष्ट नहीं होता जैसे कि 1, 2, 3.... आदि राशियों का होता है। क, ख, ग... आदि अव्यक्त राशियों का मान कुछ भी हो सकता है परन्तु 1, 2, 3.... आदि व्यक्त राशियों का मान निश्चित है। 1 का मान या मूल्य 1 ही रहेगा, 2 का मान या मूल्य 2 ही रहेगा चाहे कुछ भी हो परन्तु क, ख, ग... आदि राशियों का मान निकालने से भिन्न-भिन्न आता है इसलिए इन्हें अव्यक्त कहा जाता है। उदहारण के लिए 3 क 48 का अर्थ होगा कि 'क' एक ऐसी संख्या जिसके 3 गुने में से 4 को घटाया जाए तो फल 8 मिलता है। इस समीकरण में 'क' का मान 4 होगा, वहीं 2क 48 इस समीकरण में 'क' का मान 6 होगा। उदाहरण में दिए गए इन दोनों ही समीकरणों में 'क' का मान अज्ञात था और दोनों ही परिस्थितियों में उसका अलग-अलग उत्तर आया है।

बीजगणित में इस प्रकार के अक्षर-प्रयोग का आधुनिक प्रयास कुछ शताब्दी पूर्व ही प्रारंभ हुआ है, परंतु समीकरण सिद्ध करने वीजगणित में केवल समीकरणों का समावेश मात्र नहीं होता। इसमें बहुपद, श्रेणियों, भित्र, गुणनफल, गुणनखंड, वर्ग, घन जैसी अनेक प्रक्रियाओं एवं संक्रियाओं का

समावेश होता है। प्राचीन काल में पद्य के माध्यम से व्यक्त शब्द भी अंक का बोध कराते थे। इस आधार पर दशगुणोत्तरी संख्याओं का वैदिक उदाहरण-

एक-दश-शत सहस्त्रायुत-लक्ष-प्रयुत-कोटयः क्रमशः ।

अर्बुदमब्जं खर्व-निखर्व-महापद्म-शङ्कवस्तस्मात् ।।

जलधिश्चान्तं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः ।

सङ्ख्यायाः स्थानानां व्यवहार्यं कृताः पूर्वैः ॥

सहस्त्रम् (1000), अयुतम् (10,000), लक्षम् (100,000), प्रयुतम् (1,000,000), कोटि: (10,000,000), अर्बुदम् (100,000,000), अब्जम् (1,000,000,000), खर्वम् (10,000,000,000), निखर्वम (100,000,000,000), महापद्मम् (1,000,000,000,000), शङ्कुः (10,000,000,000,000), जलधि (100,000,000,000,000), अन्त्यम् (1,000,000,000,000,000), मध्यम् (10,000,000,000,000,000), परार्धम् (100,000,000,000,000,000)

बीजगणित के जिस प्रकरण में अनिर्णीत समीकरणों का अध्ययन किया जाता है, उसे प्राचीन काल में कुट्टक के नाम से जाना जाता था। भारतीय गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने उक्त प्रकरण के नाम पर ही इस प्रक्रिया का नाम लगभग 628 ईस्वी में 'कुट्टक गणित' रखा। बीजगणित का सबसे प्राचीन नाम यही है। 860 ईस्वी में प्रथूदक स्वामी ने इसका नाम बीजगणित रखा। बीज का सामान्य अर्थ है तत्व, इस प्रकार बीजगणित का अर्थ हुआ वह विज्ञान जिसमें तत्वों का अथवा तत्वों द्वारा परिगणन किया जाए।

अध्याय : 02

भाषा में गणित

भूमिका, संख्या- शब्दों के लिए प्रेरणाएँ, शून्य का चिन्तन, साहित्य शास्त्रों मे शून्य का चिन्तन, गणित शास्त्रों में शून्य का चिन्तन, शून्य के साथ गणितीय संक्रियाएँ, गणितीय संक्रियाओं में शून्य की उपलब्धी, संख्या पद्धति के विकास का आधार (दशमलव आधार) ।

संख्या-शब्दों के लिए प्रेरणाएँ

विद्वानों का अनुमान है कि प्रारम्भ में मानव को हाथ की उँगलियों से गिनने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। इसका समर्थन भाषा के शब्दों से भी प्राप्त होता है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार 'पञ्च' शब्द का जो भारोपीय मूल रूप है, उससे ही उँगली अर्थ में इंग्लिश के finger का विकास हुआ है।

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।

दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः।। (ऋग्वेद, 10.94.7)

अर्थात् दोनों हाथों की 10 उँगलियों का वर्णन वेद के एक मन्त्र में अवनि, कक्ष्या, योक्र, योजन, अभीशु आदि अनेक शब्दों द्वारा किया गया है।। इससे इस संख्या को गिनने में उँगलियों का सहारा लेने की सूचना प्राप्त होती है।

हाथ तथा पैर की उँगलियों को मिलाकर 20 संख्या तक गिनने की प्रवृत्ति बहुत-सी जनजातियों में देखी गई है। इसके लिए उन्होंने 'कौड़ी' जैसे शब्द भी विकसित किये, जो कि संस्कृत की 'कोटि' से सर्वथा भिन्न है। ये लोग 'कौड़ी' को ही बार-बार रखकर आगे की संख्या पहचानते थे। यह प्रवृत्ति जनसाधारण में खूब प्रचारित हुई। एक ओर जहाँ गणित के विद्वानों में गणित की ऊँचाइयों पर पहुँचने की होड़ लगी थी, तो दूसरी ओर जन साधारण 20 के आगे गिनती नहीं गिन पाते थे। **सोऽयं शतं शिरश्छेदेऽपि न ददाति, विशतिपञ्चकं तु प्रयच्छतीति शाकटिक- (वृत्तान्तमनुहरेत् - सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. 287)** दर्शनशास्त्र में एक स्थान पर एक गाड़ीवान की कहानी आई है कि वह 100/- रु. तो सिर कटने की हालात में भी देने को तैयार नहीं होता था, पर 5 बिस्सी तो दे देता था।

अर्बुदो मेघो भवति, अरणमम्बु तद्दोऽम्बुदः स यथा महान् बहुर्भवति वर्षस्तदिवार्बुदम्। (निरुक्त 3.10)

अर्थात् पानी की बूँदों के आधार पर संख्यावाचक वैदिक 'अर्बुद' शब्द विकसित हुआ है। संस्कृत में मेघवाचक 'अम्बुद' शब्द प्रसिद्ध है। इससे ही 'अर्बुद' शब्द के विकसित होने को महर्षि यास्क ने प्रमाणित किया है। वैदिक युग में प्राकृत प्रवृत्ति के विकास का यह एक बढ़िया उदाहरण है।

'लक्ष' शब्द वैदिक काल से 'लक्ष्य' अर्थ में प्रयुक्त देखा गया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा है कि इन्द्र ने शिकारी के समान अपने लक्ष्य को जीत लिया। बौद्ध युग में भी यह इसी अर्थ में बना रहा तथा सामान्य मनुष्य के लिए उच्च लक्ष्य के रूप में दस हजार की दशगुणोत्तर संख्या अर्थ में इसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

कोटि शब्द मूलतः धनुष के अग्र भाग का वाचक है। करोड़ संख्या को संख्या का अन्तिम सिरा मानते हुए इसके लिए 'कोटि' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

शून्य के लिए प्रेरणाएँ :

वेद में शून्य का प्रयोग उपलब्ध है। वहाँ किसी अनुपलब्ध वस्तु को चाहने वाले के लिए 'शून्यैषी' का प्रयोग किया गया है। मन्त्र इस प्रकार है-

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्रपत मेह रंस्थाः। (**अथर्ववेद** 14.2.19).....

वेद के पश्चात् महाभारत आदि में अभाव या खाली अर्थ में इस शब्द का नियमित रूप से प्रयोग प्राप्त होता है। आगे चलकर बौद्ध दर्शन के शून्यवाद नामक सम्प्रदाय में एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में इसका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसके प्रवर्तक महान् दार्शनिक नागार्जुन ने शून्यता को सभी दृष्टियों में सर्वश्रेष्ठ बताया। इनके अनुसार इसका मौलिक अर्थ सत् भी नहीं असत् भी नहीं, दोनों भी नहीं, दोनों का प्रतिषेध भी नहीं - इस प्रकार चारों कोटियों से विनिर्मुक्त तत्त्व है; क्योंकि विश्व के किसी पदार्थ की व्याख्या इन चारों में से किसी भी कोटि में कर पाना सम्भव नहीं है। यह दर्शन शून्यता का अर्थ चारों कोटियों से विनिर्मुक्त किसी पाँचवें तत्त्व को नहीं बताता, अपितु इन्हीं चारों की अव्याख्येयता, अनिर्वचनीयता को सूचित करता है। नागार्जुन ने शून्यता को सभी दृष्टियों में सर्वश्रेष्ठ बताया। इनके अनुसार इसका मौलिक अर्थ सत् भी नहीं असत् भी नहीं, दोनों भी नहीं, दोनों का प्रतिषेध भी नहीं - इस प्रकार चारों कोटियों से विनिर्मुक्त तत्त्व है; क्योंकि विश्व के किसी पदार्थ की व्याख्या इन चारों में से किसी भी कोटि में कर पाना सम्भव नहीं है। यह दर्शन शून्यता का अर्थ चारों कोटियों से विनिर्मुक्त किसी पाँचवें तत्त्व को नहीं बताता, अपितु इन्हीं चारों की अव्याख्येयता, अनिर्वचनीयता को सूचित करता है। नागार्जुन ने कहा है कि जो

लोग इस शून्यता को कोई पाँचवें तरह का तत्त्व समझने लगते हैं, उन्हें समझाने के लिए हमारे पास कोई दवाई नहीं है। इस प्रकार 'शून्यता' जगत् के पदार्थों को चारों कोटियों से विनिर्मुक्त सिद्ध करती है।

इस शब्द के सबसे प्राचीन अर्थ का इसकी व्युत्पत्ति से अनुमान किया जा सकता है। यद्यपि गणवार्तिककार ने अपनी व्युत्पत्ति से इसके मौलिक अर्थ को मिटा दिया है। उन्होंने इस शब्द को किसी-किसी प्रकार सिद्ध करने के आवेश में इसे कुत्ते अर्थ वाले श्वन् शब्द से हित अर्थ में यत् प्रत्यय द्वारा सिद्ध किया है। यहाँ पूछा जा सकता है कि एकान्त या खाली स्थान से कुत्ते का क्या हित सिद्ध होता है!!

इस शब्द की बढ़िया व्युत्पत्ति के संकेत वैदिक साहित्य से प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा है कि पहले असत् ही था, वह सत् हुआ तथा अण्ड बना। वह साल भर तक बढ़ता रहा तथा उसके बाद फूट कर रजत वर्ण की पृथिवी तथा सुवर्ण-वर्ण के द्युलोक के रूप में विभक्त हो गया। इससे दूर-दूर तक खाली स्थान आकाश परिव्याप्त हो गया।

इस बढ़ने तथा सूजने आदि अर्थ में 'शून' शब्द का प्रयोग वेदों में प्राप्त है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह शब्द सूजने अर्थ वाली श्वि धातु से भूतकाल में क्त प्रत्यय होकर निर्मित होता है। वास्तव में उस अण्ड के इस सूजे हुए खाली स्थान का नाम ही शून्य अथवा आकाश है। इन वर्णनों को मिलाकर देखने से इसकी यही व्याख्या सर्वाधिक सुसंगत प्रतीत होती है।

इससे स्पष्ट है कि शून्य के विकास के लिए मूलतः आकाश के स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त हुई है। अतः यहाँ प्रथम न्याय-वैशेषिक में परिकल्पित आकाश को अवधारणा को क्षेप में प्रस्तुत करते हैं। वैशेषिक संक्षेप सूत्र में आकाश के विषय में उस समय प्रचलित दो प्रकार के मत प्रस्तुत किये गए हैं, जो इस प्रकार है-

प्रथम मत के अनुसार आकारा शून्यात्यक या अभाव स्वरूप है। यह इस स्वरूप वाला होकर कमरे से निष्क्रमण, उसके अन्दर प्रवेशन इत्यादिः क्रियाएं कराने का हेतु होता है। यह स्थिति स्पर्श वाले भाव दायों से भिन्न है। पृथिवी आदि भाव पदार्थ जगह घेरते हैं तथा वे अपनी जगह पर किसी को आने नहीं देते। इससे विपरीत स्थिति वाला होने से आकाश अभावस्वरूप है। 'खाली स्थान', 'कुछ नहीं' को प्रतीति ही आकाश को प्रतीति है।

,न्याय-वैशेषिक के द्वितीय सिद्धान्त मत के अनुसार आकाश एक भाव पदार्थ है। पर वह छोटे-छोटे जगह घेरने वाले अणुओं से निर्मित नहीं, अपितु विषु है। इस प्रकार महत्परिमाण वाला होने से

अनन्त है। किसी के भी महत्व को परिमाप जिन उपायों या उपकरणों से हो सकती है, वह उनसे भी कहीं बढ़ कर है। इस प्रकार वह अगम्य तथा अपरिभाष्य है। यह स्थिति अनन्त (infinity) के इस आधुनिक वर्णन से तुलनीय है कि अनन्त ऐसा बड़े से बड़ा है जो उस बड़े से भी बड़ा है, जितना बड़े से बड़ा हम सोच सकें। अनन्त को यह अवधारणा अणु को सूक्ष्मता को अनन्तता का दूसरा छोर है।

दर्शन-जगत् में इस प्रकार शून्य को भी दो प्रकार से समझने की परम्परा रही है। साहित्य-शास्त्र में भी इस शब्द के दोनों में प्रयोग शान होते हैं। प्रथम अधर्ववेद के शून्यैषी (शून्य को चाहने वाला) जैसे शब्द 'अभाव अर्च को रख कर भी 'कुछ है की नीति कराते है। द्वितीय अर्थ का वर्णन करते हुए उपनिषद् का एक सुन्दर मन्त्र इस प्रकार है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

(बृहदायक उपनिषद् 5.1.1)

अर्थात् यह ऐसा पूर्ण है जिस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी पूर्ण ही बच जाता है। अनन्त का इसने बढ़िया वर्णन और क्या हो सकता है।।

भागवत के एक अत्यन्त ही रोचक श्लोक में दोनों अर्थों वाले शून्य का एक साथ प्रयोग देखने को मिलता है-

यत्तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मम् अशून्यं शून्यकल्पितम्।

अर्थात् वह, परम सूक्ष्म ब्रह्म शून्य नहीं है, फिर भी शून्य के रूप में प्रकल्पित है। यहाँ पहले शून्य का अर्थ अभाव तथा दूसरे शून्य का अनन्त अर्थ है। इस प्रकार 'वह ब्रह्म शून्य या अभावस्वरूप नहीं, फिर भी शून्य या अनन्तस्वरूप है', यह इसका सूक्ष्म अर्थ है। उक्त विवेचना के संक्षेप उक्त विवेचना के अनुसार हमें शून्य के दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते है-

(1) शून्य अभावस्वरूप है। पर यह ऐसा नहीं जो हमारे ज्ञान का विषय न बन सके। वास्तव में वह बोध्य है, व्याख्येय है। वह विविध कार्यों का कारण भी बन सकता है। जैसे न्याय में घट कार्य का दण्ड, चक्र, चौवर, कुलाल के साथ 'वर्षा के अभाव को भी कारण माना जाता है। यह वर्षाऽभाव न्यायनय में वर्षा के अभावस्वरूप होकर भी एक पदार्थ है। वेदान्त सिद्धान्त में यह वर्षा से भिन्न कोई भावान्तर स्वरूप है। दोनों ही स्थितियों में यह विविध संक्रियाओं का निष्पादक माना जाता है।

(2) शून्य सर्वथा अपरिमेय या अव्याख्येय है। वह सभी कोटियों से रहित है। हम अपने दैनिक जोवन में जिन-जिन विमाओं को जानते है, उनसे वह भिन्न है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि यह किसी चतुर्थ विमा के आकार को प्राप्त कर सके। यह एक ओर अणुता के आनन्त्य को रखता है, जिसे परमात्य कहते हैं। दूसरी ओर महत्त्व के आनन्त्य को रखने से परममहान् है। जिसका न्याय में एक उदाहरण आकाश है। दोनों ही दशाओं में यह सर्वचा अगम्य एवं अबोध्य है। इस पर कोई क्रिया नहीं हो सकती। अथवा यो कहे कि इस पर की गई किसी संक्रिया से परिणाम में कोई भित्रता नहीं आती। इसके लिए छोटा, बड़ा या कम, अधिक जैसे शब्दों के प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है। दर्शनशास्त्र में इस 'अनन्त से जगत् उत्पत्ति', 'इसमें विलय' इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग केवल समझने का उपायमात्र है। वस्तुतः उसमें ऐसा कुछ नहीं होता।

गणित-शास्त्र में शून्य

आकाशं गगनं शून्यमम्बर खं नभो वियत्। (गणितसार संग्रह)

यह निरूपण बहुत रोचक है कि गणित-शास्त्र में आकाश के स्वरूप से प्रेरणा प्राप्त करते हुए गणितीय संक्रियाओं द्वारा दोनों प्रकार के शून्य को प्राप्त किया गया है। इसीलिए महावीर आदि विद्वानों ने आकाश के पर्यायवाचक शब्दों को शून्य का पर्याय निरूपित किया है।।

संख्या-लेखन हेतु प्रथम प्रकार के शून्य का उपयोग

गणित-शास्त्र में यह शून्य अभावस्वरूप होकर भी संख्या के अन्तर्गत है। इसका अलग नाम तथा प्रतीक चिह्न है। यह ठीक उसी प्रकार का है, जैसे न्याय में अभाव असत् स्वरूप होकर भी पदार्थ है। गणित में शून्य का प्रतीक अन्य किसी संख्या के अभाव की सूचना देता है। फिर भी वह अन्य संख्याओं के समान अपने से दाहिने या बाई ओर की संख्याओं के मान को बदलने की क्षमता रखता है। एक की दशगुणज तथा उसके वर्ग, घन आदि संख्याओं के लेखन में 1 से दाहिने ओर क्रमशः शून्यों की संख्या बढ़ती जाती है तथा ये शून्य क्रमशः1 के दशगुणित तथा इसके उत्तरोत्तर वर्धमान मान की सूचना देते हैं। इसी प्रकार 1 को 10 से तथा उसके वर्ग, घन आदि से विभाजित संख्याओं के लेखन में 1 से बाई ओर दशमलव बिन्दु एवं 1 के बीच क्रमशः शून्यों की संख्या बढ़ती जाती है तथा ये क्रमशः 1 के उत्तरोत्तर ह्रासमान मान को प्रकट करते हैं।

गणित-शास्त्र में इस प्रकार का संख्या-लेखन दशगुणोत्तर पद्धति के आधार पर विकसित है। इस पद्धति से लिखे गए प्रत्येक अंक का दशगुणित स्थानीय मान होता है। इसमें उक्त विशेषताओं वाले शून्य का तथा इसके एक सुनिश्चित प्रतीक का प्रयोग अनिवार्य है। गणित के लिए **शून्य चिह्न को प्रकट करते हुए सबसे पहला प्रयोग प्रायः 200 ई.पू. में विरचित पिंगल छन्दः सूत्र में प्राप्त हुआ है।** इस प्रकार इस समय इसका कोई प्रतीक चिह्न अवश्य विकसित हो गया था। इससे इस समय स्थानीय मान पद्धति द्वारा संख्या-लेखन की सूचना प्राप्त होती है। इस पद्धति का स्पष्ट संकेत ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी के योग-सूत्र व्यास-भाष्य के एक सुन्दर विवरण से प्राप्त होता है। वहीं कहा है कि एक ही रेखा सौ के स्थान पर 100 का दस के स्थान पर 10 का तथा वहीं 1 के स्थान पर 1 अर्थ प्रदान करती है।

इस पद्धति से लेखन का अस्पष्ट संकेत ई.पू. 4 वीं शताब्दी के निरुक्तकार यास्क के 'दश' के निर्वचन से प्राप्त होता है। यह इस प्रकार है-

दश दस्ता निरुक्त 3.10

अर्थात् दस नाम इसलिए है, क्योंकि इस संख्या तक संख्या-लेखन के लिए अंक परिपूर्ण हो जाते हैं। इसके पश्चात् किसी भी बड़ी से बड़ी संख्या-लेखन के लिए इन्हीं अंकों की पुनरावृत्ति की जाती है।। यह स्थिति केवल स्थानीय मान पर आधारित लेखन-पद्धति में ही सम्भव है। अन्य किसी भी पद्धति में इससे अधिक अंकों की अनिवार्य आवश्यकता होती है। इससे यह भी प्रकट है कि निरुक्तकार ने 9 के अलावा शून्य को भी अतिरिक्त अंक के रूप में स्वीकार किया है।

वेद में आकाश या अवकाश से परिपूर्ण गोल छिद्र के लिए 'ख' का प्रयोग प्राप्त है। इस आधार पर आगे चल कर इस अतिरिक्त अंक के लिए गोलाकार प्रतीक विकसित हुआ।

गणितीय संक्रियाओं से प्रथम प्रकार के शून्य की उपलब्धि:

सर्वप्रथम 628 ई. के महान् गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने गणितीय संक्रियाओं द्वारा इस प्रथम अभावरूप शून्य को उपलब्ध करने का यह प्रकार बताया है-

धनयोर्धनमृणमृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समैक्यं खम्। (ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त 18.30)

अर्थात् दो समान धन संख्याओं में से एक धन संख्या का अन्तर, दो समान ऋण संख्याओं में से एक ऋण संख्या का अन्तर तथा क्रमशः धन, ऋण चिह्न वाली दो समान संख्याओं के योग का परिणाम 'ख' अथवा शून्य होता है। इस प्रकार - + 5 - (+ 5)= 0

$$-5 - (-5) = 0$$

$$+5 + (-5) = 0$$

यह शून्य अन्य संख्याओं के साथ गणितीय संक्रिया द्वारा अनेक परिणाम उपस्थित करता है। ब्रह्मगुप्त के पश्चात् त्रिशतिकाकार श्रीधराचार्य ने गुणन की संक्रियाओं द्वारा इस प्रकार के शून्य को प्राप्त करने का यह उपाय बताया है-

खस्य गुणनादिके खं संगुणने खेन च खमेव। (त्रिशतिका सूत्र 8)

अर्थात् शून्य को किसी राशि से गुणा इत्यादि करने पर या शून्य से किसी राशि को गुणित करने पर परिणाम शून्य ही होता है। इस प्रकार उन्होंने दो परिस्थितियों की संकल्पना की है तथा उन दोनों से एक ही परिणाम प्राप्त किये हैं। जैसे-

$$0 \times 5 = 0 \text{ तथा } 5 \times 0 = 0$$

इससे प्राप्त शून्य भी गणित की अन्य संक्रियाओं से विविध परिणाम प्राप्त करा सकता है। वास्तव में इस गुणन को सही सिद्ध करने का उपाय ही यह है कि इसके साथ भाग से तदनुरूप परिणाम प्राप्त होते हैं। इस प्रकार - $0 \times 5 = 0$ सही है; क्योंकि

$0/5 = 0$

इस गुणन के सही सिद्ध होने पर गुणन में क्रम विनिमेय गुण लागू होने के कारण $5 \times 0 = 0$ भी सही सिद्ध होता है। वर्गादौँ खम्-लीलावती, शून्य परिकर्म, श्लोक ।। यहाँ त्रिशतिकाकार ने आदि पद के प्रयोग से यह प्रकट किया है कि शून्य का वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल इत्यादि भी शून्य होता है। भास्कराचार्य का भी ऐसा ही मानना है। अतः -

$$0^0 = \sqrt{0},\ 0^3 = \sqrt[3]{0} = 0$$

साथ ही यहाँ त्रिशतिकाकार ने 'आदि' पद से यह भी ध्वनित किया है कि शून्य को किसी राशि से भाग देने पर भी उसका परिणाम शून्य होता है। इस तथ्य को हम पूर्वोक्त रीति से विपरीत क्रम से सही सिद्ध कर सकते हैं- $0/5 = 0$ सही है. क्योंकि $0 \times 5 = 0$

इसी प्रकार $0/-5 = 0$ क्योंकि $0 \times (-5) = 0$

पर त्रिशतिकाकार ने शून्य से किसी राशि को भाग देने पर उसके परिणाम के विषय में सावधानीपूर्वक कुछ नहीं कहा है। सम्भव है त्रिशतिकाकार को इसके परिणाम के अपरिभाष्य होने का

आभास रहा हो। आधुनिक गणित में इस संक्रिया का प्रतिषेध किया जाता है', क्योंकि यह संक्रिया हमें एक गलत निष्कर्ष की ओर प्रेरित करती है। यदि हम इस संक्रिया को करते हुए 5/0 = 0 ऐसा कहें तो पूर्वोक्त रीति से यह कहना होगा कि 0 * 0 = 5 जो कि गलत है। सभी प्राधीन या अद्यतन विद्वान् ० × 0 या 0 ^ 2 = 0 ही मानते है, जैसे ऊपर दिखाया गया है। अतः यह संक्रिया प्रतिषिद्ध है।

ताडितः खेन राशिः खम्-गणितसारसंग्रह। शून्येन ताडितो भक्तः राशिः शून्यम्। यह इसका अर्थ है। पर महावीराचार्य आदि कुछ विद्वानों ने शून्य से किसी राशि को भाग देने का परिणाम शून्य बताया है। इसे आधुनिक गणित में उपरिलिखित कारण से स्वीकार नहीं किया जाता।

इस प्रकार शून्य के अभाव सूचक होने से भारतीय गणित में 'अंक' शब्द 9 अर्थ को प्रकट करता है। पर जैसा कि ऊपर कहा गया कि महर्षि यास्क ने शून्य के अलग प्रतीक चिह्न होने, गणितीय संक्रियाओं में भाग लेने, दशगुणोत्तर पद्धति में स्थानीय मान निर्धारण हेतु इसका उपयोग होने से इसे 9 से अतिरिक्त अन्तिम अंक के रूप में स्वीकार किया है।

उपरिलिखित सभी संक्रियाओं से अभावरूप शून्य की प्राप्ति होती है तथापि यह विविध संक्रियाओं से सम्बद्ध होकर अनेक प्रकार के परिणाम उपलब्ध करा सकता है। अतः यह प्रथम प्रकार का शून्य है।

गणितीय संक्रियाओं से द्वितीय प्रकार के शून्य की उपलब्धि :

सर्वप्रथम ब्रह्मगुप्त ने यह भी बताया कि शून्य से विभाजन की संक्रिया से उसका परिणाम 'अनन्त' प्राप्त होता है। इसका उन्होंने पारिभाषिक रूप से 'तच्छेद' नाम दिया। श्लोक इस प्रकार है-

खोद्धृतमृणं धनं वा तच्छेदम्। (ब्रा.स्फु.सि. 18.35)

कोई धन संख्या या ऋण संख्या ख अर्थात् शून्य से विभक्त हो तो उसका परिणाम तच्छेद या अनन्त प्राप्त होता है।

इसका अनुसरण करते हुए भास्कराचार्य ने अलग-अलग शब्दों में यही तथ्य प्रकट किया है-

खहारो भवेत् खेन भक्तश्च राशिः। (भास्करीय बीज गणित, श्लोक 3)

खभाजितो राशि खहरः स्यात्। (लीलावती, शून्य परिकर्म श्लोक 1)

अर्थात् ख या शून्य से विभाजित राशि खहर या अनन्त या परममहान् होती है। इस प्रकार यहाँ अनन्त को खहर यह अन्वर्थ पारिभाषिक नाम दिया है।

लीलावती के टीकाकार रंगनाथ आदि ने इसकी उपपत्ति यह बताई है कि किसी भी संख्या को अल्प, अल्पतर, अल्पतम से भाग देने पर उसका भागफल क्रमशः महत्, महत्तर, महत्तम होता है। अतः 'परमाल्प' माने जाने वाले शून्य से भाग का परिणाम अवश्य ही परममहान् होगा, जो कि अनन्त है।

यह स्थिति बहुत विचित्र है। । से नीचे उत्तरोत्तर दशमलव संख्याओं के द्वारा हम शून्य के समीप, समीपतर पहुँचते हैं। यह संख्या शून्य के जितना समीप होती है, उससे विभाजित राशि का भागफल उतना ही अधिक होता है। जैसे-

$$\frac{5}{.5} = 10, \frac{5}{.1} = 50, \frac{5}{.01} = 500, \frac{5}{.001} = 5000$$

यह प्रक्रिया कभी रुकती नहीं। अतः निश्चय ही परमाल्प से विभाजित करने का परिणाम परममहान् या अनन्त होगा।

इस सम्पूर्ण परिस्थिति को ध्यान में रखकर भास्कराचार्य ने शून्य से विभाजित संख्या को पारिभाषिक अन्वर्थ 'खहर' नाम दिया है तथा इसे अन्यत्र 'अनन्त' के रूप में निरूपित किया है। यहाँ निश्चय ही 'ख' का अर्थ अभावरूप शून्य नहीं, अपितु 'परमाल्प संख्या' है। किसी संख्या से पूर्व दशमलव बिन्दु के बीच शून्यों के बढ़ाने की कोई सीमा नहीं हो सकती। इस प्रक्रिया में हम 'अनन्त परमाल्प' को प्राप्त करते हैं। यह धनात्मक या भाव संख्या है। इससे विभाजित करने पर पूर्वोक्त प्रक्रिया से 'अनन्त परममहान' को प्राप्त करते हैं।

भास्कराचार्य भली भाँति जानते थे कि अभावरूप शून्य से विभाजित करना परिभाष्य नहीं है। अतः उन्होंने इस संक्रिया का वह परिणाम नहीं बताया जिसे महावीराचार्य आदि ने माना था। उन्होंने जो भी परिणाम बताया है, वह परमाल्प अर्थ वाले 'ख' के प्रति सुसंगत है। अतः आधुनिक गणित की भाषा में उनका आशय यह है कि धनात्मक मूल्य वाली शून्य की ओर अग्रसर परमाल्प संख्या से किसी राशि को विभाजित करने पर उसका परिणाम परममहान् या अनन्त होता है। इस स्थिति में 5 को 0 से विभाजित करने का आशय आधुनिक संकेत में इस प्रकार होगा-

$$h \xrightarrow{\text{सीमा}} 0 \frac{5}{h} = \infty$$

इस अनन्त की विशेषता को उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया है-

अस्मिन् विकारः खहरे न राशावपि प्रविष्टेष्वपि निःसृतेषु।

बहुष्वपि स्याल्लयसृष्टिकालेऽनन्तेऽच्युते भूतगणेषु यद्वत्।।(भास्करीय बीज-गणित, श्लोक 4)

अर्थात् इस खहर या अनन्त संख्या में चाहे कोई भी संख्या प्रविष्ट या निःसृत हो, इसमें कोई विकार नहीं होता। जिस प्रकार प्रलय काल में अनन्त परमेश्वर में पदार्थों के विलीन होने पर अथवा सृष्टि काल में उससे पदार्थों के उद्भूत होने पर उस अच्युत या अनन्त में कोई विकार नहीं आता। गणितशास्त्र में भी इस अनन्त में किसी भी संख्या के जोड़ने या घटाने पर वह संख्या पूर्ववत् अनन्त बनी रहती है।

इसके साथ ही उन्होंने 'परमाल्प' के साथ इस गणितीय संक्रिया का भी उल्लेख किया है-

शून्ये गुणके जाते खं हारश्चेत् पुनस्तदा राशिः।

अविकृत एव ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च युतः ।। (लीलावती, शून्यपरिकर्म, श्लोक 2)

अर्थात् यदि किसी राशि को शून्य से गुणा तथा उसी से विभाजित किया जावे तो वह राशि उसी प्रकार अविकृत या अपरिवर्तित बनी रहती है। जैसे किसी राशि में शून्य को जोड़ने या उसमें से शून्य को घटाने पर होता है।

खगुणो निजार्धयुक्तस्त्रिभिश्च गुणितः ग्रहतस्त्रिषष्टिः। (लीलावती, शून्यपरिकर्म, उदा. श्लोक 1)

इसके लिए उनके द्वारा प्रस्तुत उदाहरण को सरल करने पर इस प्रकार लिखते हैं।-

$$\frac{9x\times0}{2\times0} = 63 \Rightarrow x = 14$$

उनके आशय को अद्यतन संकेत लिपि में इस प्रकार प्रकट करते हैं-

$$\text{सीमा } h \rightarrow 0 \; \frac{9x}{2} \times \frac{h}{h} = 63 \rightarrow x = 14\,h$$

परमाल्प के साथ ये दोनों गणितीय संक्रियाएँ सर्वथा समुचित है। ऊपर देखा गया कि किसी राशि को अल्पतर, अल्पतम से विभाजित करने पर उसका परिणाम वर्धमान क्रम में अधिकतर, अधिकतम होता है। साथ ही यह भी सच है कि अल्पतर या महत्तर किसी भी क्रम की ओर अग्रसर संख्या को उसी अल्पतर या महत्तर से विभाजित करने पर उसका परिणाम सदा । होता है। इससे किसी भी राशि को गुणित करने पर उस राशि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः प्रस्तुत संक्रिया से वह राशि अपरिवर्तित रूप से 63 बनी रहती है।

इस अध्याय में ऊपर उल्लिखित बृहदारण्यक उपनिषद् 5.1.1 के मन्त्र में इसी अनन्त या पूर्ण का निरूपण है। उस अनन्त में किसी के भी योग या व्यवकलन से वह अविकृत या पूर्ण बना रहता है। वास्तव में वेदान्त सिद्धान्त की यह बहुत सुन्दर गणितीय व्याख्या है। उस अनन्त के सामने सागर की बूँदें या बालू के कणों को प्रकट करने वाली विशाल संख्याएँ सर्वथा तुच्छ है। वस्तुतः उस अनन्त के साथ अपादान, अधिकरण आदि कारकों का प्रयोग सर्वथा निरर्थक है। हम केवल अपने दैनिक अभ्यास वश ऐसा प्रयोग करते हैं।

यह बहुत सुखद एवं आनन्द का विषय है कि भारतीय मनीषा ने वेदान्त से गणित शास्त्र को तथा गणित से वेदान्त सिद्धान्त को सम्पुष्ट किया है।

संख्या-शब्दों के विकास का दाशमिक आधार:

वेदों में संख्या-शब्दों का क्रम तथा उनकी व्युत्पत्तियों से विदित होता है कि ये शब्द मूलतः दाशमिक आधार पर अनेक पद्धतियों द्वारा विकसित किये गए है। इन पद्धतियों का क्रमशः निरूपण इस प्रकार है-

1. दशगुणोत्तर पद्धति:

यजुर्वेद 17.2 के पूर्वोल्लिखित मन्त्र में दश, शत, सहस्र आदि सभी अगली संख्याएँ पिछली संख्याओं के सापेक्ष दशगुणित मान को प्रकट करती है। महर्षि यास्क की व्युत्पत्ति से प्रकट है कि ये शब्द इसी अवधारणा से परिचालित हैं। एक निर्वचन इस प्रकार है-

शतं दश दशतः- निरुक्त 3.10

अर्थात् दस गुणित दस के कारण शत नाम है। इस प्रकार $10 \times 10 = 100$ यह संक्रिया यहाँ सन्निहित है।

2. दशैकादिगुणोत्तर पद्धति :

पाणिनि ने विशति, त्रिंशत् आदि का क्रमशः उल्लेख किया है। वेद में भी इनका अलग-अलग उल्लेख है। ये संख्याएँ 10 का 2.3 आदि के साथ क्रमशः गुणनफल के द्वारा विकसित है। निरुक्तकार के निर्वचन से यह प्रकट है-

विशतिर्द्विर्दशतः - निरुक्त 3.10

अर्थात् 10 का 2 बार गुणित होने से विंशति नाम है। अतः इस शब्द में 10 × 2 = 20 संक्रिया अन्तर्निहित है। आगे के शब्दों के लिए भी व्याख्याकारों ने समकक्ष व्युत्पत्तियाँ दी हैं।।

3. दशैकादि-गुणयोगोत्तर पद्धति :

इसके उदाहरण एकविंशति, त्रयोविंशति आदि हैं। ये शब्द दस का एक आदि के साथ गुणनफल का एक आदि के साथ योग से विकसित हैं। व्याकरण में द्वन्द्व समास द्वारा इन्हें अनुशासित करते हुए इन संक्रियाओं का संकेत दिया है। इस प्रकार पञ्चविंशति में 5 + (10 × 2) संक्रिया अन्तर्निहित है। इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए वेद में शतैकादि-गुणयोगोत्तर पद्धति के अनुसार 720 के लिए- आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र **सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः। (ऋग्वेद** 1.164.11) जैसे प्रयोग भी प्राप्त हैं।

संख्याओं के इस वैज्ञानिक क्रम में गणित-शास्त्र के क्रमचय तथा आवर्तन (repetition) के बढ़िया उदाहरण प्राप्त होते हैं। आगे चलकर भारतीय गणित में 'अंक पाश' के अन्तर्गत इनका बहुत विकास किया गया।

3. दशैकादियोगोत्तर पद्धति : यजुर्वेद के एक मन्त्र में एकादश, त्रयोदश आदि विषम संख्याओं का क्रमशः उल्लेख प्राप्त है। ये सभी 10 के 1 आदि के साथ योग से निर्मित हुई है।

तृतीय चतुर्थ उपभेद के द्विविध प्रकार:

वेद में 'योग का क्रम-विनिमेय गुण' (Commutative law of addition) नामक गणितीय नियम के अनुसार तृतीय उपभेद की संख्याओं के लिए दो प्रकार के सम्बोधन प्रदान किये हैं-

(क) एकादिपूर्व दशाद्युत्तर

इसके उदाहरण पूर्वोल्लिखित मन्त्र में एकादश, त्रयोदश आदि हैं। संस्कृत की संख्या-माला प्रायः इस पद्धति का अनुसरण करते हुए निर्मित है। इंग्लिश में भी fifteen, sixteen आदि में इस पद्धति के चिह्न देखे जा सकते हैं।

इनमें भी नवपूर्व संख्याओं के लिए पुनः दो प्रकार के प्रयोग विकसित हुए। प्रथम के लिए वेद में नवविंशति, नवाशीति, नवनवति आदि उदाहरण प्राप्त हैं। इसका अनुसरण करते हुए हिन्दी में नवासी, निन्यानवे जैसे प्रयोग प्रचलित हुए हैं।

दूसरे प्रकार के प्रयोग 'ऊन' शब्द् के द्वारा विकसित किये गए है। वेद् में पूर्ण के विपरीत न्यून अर्थ में ऊन का प्रयोग प्राप्त है। इसके आधार पर 'एकोनविंशति' जैसे प्रयोग भी वेद् में वर्तमान है। इसका अनुसरण करते हुए हिन्दी में उन्नीस, उनतीस आदि शब्द् विकसित है।

आगे चलकर पाणिनि ने 'एकान्नविंशतिः' प्रयोग की भी सूचना दी है। इसका आसान विग्रह 'एकात् न विंशतिः' अर्थात् एक के कारण बीस नहीं यह हो सकता है। इस स्थिति में इसमें 20- 1 = 19 यह व्यवकलन की संक्रिया अन्तर्निहित है। यहाँ व्याकरण में नियम है कि इस प्रकार प्रसज्य प्रतिषेध से निर्मित एक शब्द् समस्त होकर संज्ञावाचक नहीं बन सकता। इस व्याकरणिक विवशता के कारण पाणिनि ने इस शब्द् को अदुक् आगम द्वारा अनुशासित किया है।।

(ख) दशादि पूर्व एकाद्युत्तर:

इस विधा को प्रकट करने के लिए वेद् का एक मन्त्रांश इस प्रकार है-

जघान नवतीर्नव- ऋग्वेद् 1.184.13

यहाँ दशनवगुणित संख्या को पहले तथा नव का बाद में प्रयोग किया गया है। इंग्लिश की संख्या-माला में प्रायः इस विधा का अनुसरण करते हुए twenty one आदि संख्याएँ विकसित हैं। इस विवरण से प्रकट है कि भारतीय संख्या-माला का क्रम, उनका नाम तथा व्युत्पत्तियाँ अत्यन्त वैज्ञानिक हैं।

अध्याय : 03

भारतीय गणितज्ञों का योगदान

श्रीनिवास रामानुजन, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, आर्यभट्ट

श्रीनिवास रामानुजन :

प्रतिवर्ष महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन की जयंती (22 दिसंबर)को राष्ट्रीय गणित दिवस (National Mathematics Day) के रूप में मनाया जाता है।

श्रीनिवास रामानुजन का जन्म 22 दिसंबर, 1887 को तमिलनाडु के इरोड (मद्रास प्रेसीडेंसी) में हुआ था और 26 अप्रैल, 1920 को मात्र 32 वर्ष की आयु में तमिलनाडु के कुंभकोणम में उनकी मृत्यु हुई थी।

रामानुजन ने काफी कम उम्र में ही गणित का कौशल हासिल कर लिया था, मात्र 12 वर्ष की आयु में उन्होंने त्रिकोणमिति में महारत हासिल कर ली थी।

वर्ष 1903 में उन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय की एक छात्रवृत्ति प्राप्त की, किंतु अगले ही वर्ष यह छात्रवृत्ति वापस ले ली गई, क्योंकि वे गणित की तुलना में किसी अन्य विषय पर अधिक ध्यान नहीं दे रहे थे।

वर्ष 1913 में उन्होंने ब्रिटिश गणितज्ञ गॉडफ्रे एच. हार्डी के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, जिसके बाद वे ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज़ चले गए।

वर्ष 1918 में लंदन की रॉयल सोसाइटी के लिए उनका चयन हुआ।

रामानुजन ब्रिटेन की रॉयल सोसाइटी के सबसे कम उम्र के सदस्यों में से एक थे और कैम्ब्रिज़ विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज के फेलो चुने जाने वाले पहले भारतीय थे।

गणित में योगदान

सूत्र और समीकरण : रामानुजन ने अपने 32 वर्ष के अल्प जीवनकाल में लगभग 3,900 परिणामों (समीकरणों और सर्वसमिकाओं) का संकलन किया है। उनके सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में पाई (Pi) की अनंत श्रेणी शामिल थी।

उन्होंने पाई के अंकों की गणना करने के लिए कई सूत्र प्रदान किये जो परंपरागत तरीकों से अलग थे।

खेल सिद्धांत :उन्होंने कई चुनौतीपूर्ण गणितीय समस्याओं को हल करने के लिए नवीन विचार प्रस्तुत किये, जिन्होंने खेल सिद्धांत के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

खेल सिद्धांत में उनका योगदान विशुद्ध रूप से अंतर्ज्ञान पर आधारित है और इसे अभी तक गणित के क्षेत्र में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

रामानुजन की पुस्तकें

वर्ष 1976 में जॉर्ज एंड्रयूज ने ट्रिनिटी कॉलेज की लाइब्रेरी में रामानुजन की एक नोटबुक की खोज की थी। बाद में इस नोटबुक को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था।

रामानुजन नम्बर : गणित में रामानुजन का सबसे बड़ा योगदान रामानुजन संख्या यानी 1729 को माना जाता है।

यह ऐसी सबसे छोटी संख्या है, जिसको दो अलग-अलग तरीके से दो घनों के योग के रूप में लिखा जा सकता है। 1729, 10 और 9 के घनों का योग है- 10 का घन है 1000 और 9 का घन है

927 और इन दोनों को जोड़ने से हमें 1729 प्राप्त होता है। 1729, 12 और 1 के घनों का योग भी है- 12 का घन है 1728 और 1 का घन है 1 और इन दोनों को जोड़ने से हमें 1729 प्राप्त होता है।

अन्य योगदान: रामानुजन के अन्य उल्लेखनीय योगदानों में हाइपर जियोमेट्रिक सीरीज़, रीमान सीरीज़, एलिप्टिक इंटीग्रल, मॉक थीटा फंक्शन और डाइवर्जेंट सीरीज़ का सिद्धांत आदि शामिल हैं।

भारतीय गणित को नयी ऊँचाइयाँ दी। क्या रामानुजन जैसा पैशन हम भी अपने अंदर पैदा कर सकते हैं? गणित के लिए रामानुजन के योगदान के सम्मान में उनके जन्मदिन को हर साल राष्ट्रीय गणित दिवस के रूप में मनाया जाता है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने चेन्नई में विख्यात महान गणितज्ञ श्रीनिवास अयंगर रामानुजन की 125वीं वर्षगांठ के मौके पर आयोजित एक कार्यक्रम में महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन को श्रद्धांजलि देते हुए वर्ष 2012 को राष्ट्रीय गणित वर्ष घोषित किया था। इस महान गणितज्ञ को श्रद्धाजंलि देने के लिए भारत सरकार ने उनके जन्मदिन, 22 दिसंबर को राष्ट्रीय गणित दिवस और 2012 के पूरे वर्ष को राष्ट्रीय गणित वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार भारत में प्रत्येक वर्ष 22 दिसम्बर को महान गणितज्ञ श्रीनिवास अयंगर रामानुजन की स्मृति में 'राष्ट्रीय गणित दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

प्रारंभिक शिक्षा व जीवन :

गणित के जादूगर और भारतीय गणितीय प्रतिभा श्रीनिवास रामानुजन का जन्म 22 दिसंबर 1887 को को मद्रास और अब चेन्नई, के छोटे से गांव इरोड नगर में हुआ था। पिता श्रीनिवास आयंगर कपड़े की फैक्ट्री में क्लर्क थे। रामानुजन का बचपन निर्धनता व कठिनाईयों में बीता। आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने के बावजूद भी बच्चों की अच्छी परवरिश के लिए वे सपरिवार कुंभकोणम शहर आ गए। रामानुजन की आरंभिक शिक्षा कुंभकोणम के प्राइमरी स्कूल में हुई। 1897 में रामानुजन ने स्कूल स्तर पर अपने जिले में अव्वल स्थान हासिल किया था। उसके बाद से वर्ष 1898 में उन्होंने टाउन हाई स्कूल में प्रवेश लिया और सभी विषयों में बहुत अच्छे अंक प्राप्त किए। वह अधिकतर विद्यालय में अपने दोस्तों से किताबें उधार लेकर पढ़ा करते थे। हाईस्कूल तक रामानुजन सभी विषयों में अच्छे थे। परन्तु गणित उनके लिए एक स्पेशल प्रोजेक्ट की तरह था, जो धीरे-धीरें जुनून की शक्ल ले रहा था। यहीं पर रामानुजन को जी. एस. कार की गणित पर लिखी पुस्तक पढ़ने का अवसर मिला। इसी पुस्तक से प्रभावित होकर उनकी रूचि गणित में बढ़ने लगी और उन्होंने गणित पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया। सामान्य से

दिखने वाले इस छात्र को दूसरे विषयों की कक्षा उबाऊ लगने लगी। गणित के अतिरिक्त अन्य विषयों में रूचि न होने के कारण वे कठिनाई से परीक्षा उतीर्ण कर पाते, लेकिन गणित में वे 100 प्रतिशत अंक पाते थे।

वर्तमान में इनकी गणित के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। विद्यालयी शिक्षा भी पूरी न कर पाने के बावजूद वे दुनिया के महानतम गणितज्ञों में शामिल हो गए, तो इसकी एक वजह थी गणित के प्रति उनका जुनून। दसवीं तक स्कूल में अच्छा परफॉर्म करने की वजह से उन्हें स्कॉलरशिप मिली, लेकिन अगले ही साल उसे वापस ले लिया गया। इसका कारण गणित के अलावा उनका बाकी सभी विषयों की अनदेखी करना था। वह कॉलेज की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाए। इस कारण बिना डिग्री लिए ही उन्हें औपचारिक अध्ययन छोड़ना पड़ा था। युवा होने पर घर की आर्थिक आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु रामानुजन ने क्लर्क की नौकरी की। जहां वह अक्सर खाली पन्नों पर गणित के प्रश्न हल किया करते थे. इसी दौरान वे इंडियन मैथमेटिकल सोसायटी के गणितज्ञों के संपर्क में आए। एक दिन एक अँग्रेज की नजर इन पन्नों पर पड़ गई, जिसने निजी रूचि लेकर उन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रो. हार्टी के पास भेजने का प्रबंध कर दिया। प्रो. हार्डी ने उनमें छिपी प्रतिभा को शीघ्र ही पहचान लिया, जिसके बाद उनकी ख्याति विश्व भर में फैल गयी। प्रोफेसर हार्टी के प्रयासों से रामानुजन को कैंब्रिज जाने के लिए आर्थिक सहायता भी मिल गई। अपने एक विशेष शोध के कारण उन्हें कैंब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए. की उपाधि भी मिली, लेकिन यहां की जलवायु और रहन-सहन में वे बल नहीं पाए। उनका स्वास्थ्य और खराब होता गया। स्वास्थ्य के साथ नहीं देने से डॉक्टरों की सलाह पर वे भारत लौटे। लेकिन बीमार हालात में ही उच्चस्तरीय शोध-पत्र लिखते रहे। इस अथक परिश्रम के कारण रामानुजन अस्वस्थ रहने लगे और 26 अप्रैल, 1920 को मात्र 32 वर्ष की आयु में ही उनका भारत में निधन हो गया। लेकिन इस कम समय में भी वह गणित में ऐसा अध्याय छोड़ गए, जिसे भुला पाना मुश्किल है।

रामानुजन का गणित के क्षेत्र में योगदान:

श्रीनिवास रामानुजन की गणना आधुनिक भारत के उन गणितज्ञों में की जाती है जिन्होंने विश्व में नए ज्ञान को पाने और खोजने की पहल की। इन्हें आधुनिक काल के महानतम गणित विचारकों में गिना जाता है। रामानुजन को गणित में कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं मिला, फिर भी इन्होंने विश्लेषण एवं

संख्या सिद्धांत के क्षेत्रों में गहन योगदान दिया। इन्होंने खुद से गणित सीखा और अपने जीवनभर में गणित के 3,884 प्रमेयों का संकलन किया। इनमें से अधिकांश प्रमेय सही सिद्ध किये जा चुके हैं। इन्होंने गणित के सहज ज्ञान और बीजगणित प्रकलन की अद्वितीय प्रतिभा के बल पर बहुत से मौलिक और अपारंपरिक परिणाम निकाले जिनसे प्रेरित शोध आज तक हो रहे है। यद्यपि इनकी कुछ खोजों को गणित की मुख्य धारा में अब तक नहीं अपनाया गया है। हाल में इनके सूत्रों को क्रिस्टल-विज्ञान में प्रयुक्त किया गया है। रामानुजन के स्वर्णिम योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी **परिसर में अपनी शोध:**

पताका फहराकर भारत को गौरवान्वित कराया। रामानुजन की असाधारण प्रतिभा ने पिछली सदी के दूसरे दशक में गणित की दुनिया को एक नया आयाम दिया। ऐसे प्रतिभावान तथा गूढ ज्ञान वाले पुरुष और महिलाओं का कभी कभार जन्म होता है। पाश्चात्य गणितज्ञ जी. एस. हार्डी ने श्रीनिवास रामानुजन को यूलर, गॉस, आर्किमिडीज तथा आईजैक न्यूटन जैसे दिग्गजों की समान श्रेणी में रखा था। रामानुजन ने गणित के ऐसे फार्मूले दिए, जिसे आज गणित के साथ-साथ टेक्नोलॉजी में भी प्रयोग किया जाता है।

रामानुजन के प्रमुख गणितीय कार्यों में एक है किसी संख्या के विभाजनों की संख्या ज्ञात करने के फार्मूले की खोज । उदाहरण के लिए संख्या 5 के कुल विभाजनों की संख्या 7 है। इस प्रकार 5, 4+1, 3+2, 3+1.1, 2+2+1, 2+1+1+1, 1+1+1+1+1। रामानुजन के फार्मूले से किसी भी संख्या के विभाजनों की संख्या ज्ञात की जा सकती है। उदाहरण के लिए संख्या 200 के कुल विभाजन होते है 3972999029388, वर्तमान में भौतिक जगत की नयी थ्योरी 'सुपरस्ट्रिंग थ्योरी' में इस फार्मूले का काफी उपयोग हुआ है। रामानुजन ने उच्च गणित के क्षेत्रों जैसे संख्या सिद्धान्त, इलिप्टिक फलन, हाइपरज्योमैट्रिक श्रेणी इत्यादि में अनेक महत्त्वपूर्ण खोजें की।

रामानुजन की स्मरण शक्ति गजब की थी। वे विलक्षण प्रतिभा के धनी और एक महान् गणितज्ञ थे। अंकों के मित्र कहे जाने वाले श्रीनिवास रामानुजन के गणित पर लिखे लेख तत्कालीन समय की सर्वोत्तम विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित होते थे। ज्यादातर गणितज्ञ उनके सूत्रों से चकित तो थे, लेकिन वे उन्हें समझ नहीं पाते थे। पर तत्कालीन विश्व प्रसिद्ध गणितज्ञ जी. एच. हार्डी ने जैसे ही रामानुजन के कार्य को देखा, वे तुरंत उनकी प्रतिभा पहचान गए। यहां से रामानुजन के जीवन में एक नए युग का

सूत्रपात हुआ। हार्डी ने उस समय के विभिन्न प्रतिभाशाली व्यक्तियों को 100 के पैमाने पर आंका था। अधिकांश गणितज्ञों को उन्होंने 100 में 35 अंक दिए और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को 60 अंक दिए। लेकिन उन्होंने रामानुजन को 100 में पूरे 100 अंक दिए थे। एक बहुत ही प्रसिद्ध घटना है। जब रामानुजन अस्पताल में भर्ती थे तो डॉ. हार्डी उन्हें देखने आए। डॉ. हार्डी जिस टैक्सी में आए थे उसका नंबर 1729 था और यह संख्या डॉ. हार्डी को अशुभ लगी। क्योंकि 1729 = 7 गुणा 13 गुणा 19 और इंग्लैण्ड के लोग 13 को एक अशुभ संख्या मानते हैं। परंतु रामानुजन ने कहा कि यह तो एक अद्भुत संख्या है। यह वह सबसे छोटी संख्या है, जिसे हम दो घन संख्याओं के जोड से दो तरीके में व्यक्त कर सकते हैं।

$$1729 = 12^3+1^3$$

$$1729 = 10^3+9^3$$

भारतीय विद्वानों की अपनी प्रतिभा से गणित में नये युग का सूत्रपात हुआ तथा गणित की इसी शोध एवं साधना के बूते पर भारत गणित के क्षेत्र में विश्व का पथ प्रदर्शक एवं प्रेणता बना। रामानुजन का गणित के क्षेत्र में मुख्य योगदान निम्नांकित प्रकार से है।

वर्ष 1903 में रामानुजन ने दसवीं की परीक्षा पास की और उसी साल घन (क्यूब) और चतुर्घात समीकरण (बायक्वाड्रेटिक इक्वेशन) हल करने का सूत्र भी खोजा।

1911 में 'सम प्रॉपर्टीज ऑफ बरनॉलीज नंबर्स' शीर्षक से रामानुजन का पहला रिसर्च पेपर 'जर्नल ऑफ मैथमेटिक्स सोसायटी' में प्रकाशित हुआ।

साल 1913 में तत्कालीन विख्यात गणितज्ञ एवं ट्रिनिटी कॉलेज के फेलो प्रोफेसर हार्डी को रामानुजन ने पत्र लिखा। इसमें 120 प्रमेय और सूत्र शामिल थे। प्रोफेसर हार्डी इस पत्र से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रामानुजन को कैम्ब्रिज आने का न्योता दिया।

उनकी योग्यता को देखते हुए 28 फरवरी, 1918 को रॉयल सोसायटी ने उन्हें अपना सदस्य बना कर सम्मानित किया। और तो और, रॉयल सोसायटी के पूरे इतिहास में इनसे कम आयु का कोई सदस्य आज तक नहीं हुआ है।

रॉयल सोसायटी की सदस्यता के बाद वह ट्रिनिटी कॉलेज की फेलोशिप पाने वाले पहले भारतीय भी बने।

रामानुजन ने कैम्ब्रिज जाने से पहले, 1903 से 1914 के बीच गणित की करीब साढ़े तीन हजार प्रमेयों को लिखा। उनके इन तमाम योगदानों को बाद में 'टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च, बॉम्बे' (वर्तमान में मुम्बई) ने प्रकाशित किया।
रामानुजन की गणितीय प्रतिभा का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 26 अप्रैल, 1920 को उनका निधन हो जाने के बाद भी उनके दिए हुए कई प्रमेय आज भी अनसुलझे हैं।
उनके निधन के पश्चात् उनकी 5000 से अधिक प्रमेयों (थ्योरम्स) को छपवाया गया और उनमें से अधिकतर को कई दशक बाद तक सुलझाया नहीं जा सका। रामानुजन की गणित में की गई अदभुत खोजें आज के आधुनिक गणित और विज्ञान की आधारशीला बनी।

संख्या-सिद्धान्त पर रामानुजन के अद्भुत कार्य के लिए उन्हें 'संख्याओं का जादूगर' माना जाता है। 'रामानुजन संख्या उस प्राकृतिक संख्या को कहते हैं, जिसे दो अलग-अलग प्रकार से दो संख्याओं के घनों के योग द्वारा निरूपित किया जा सकता है। अपने महान गणितीय अवदान के लिए रामानुजन को 'गणितज्ञों का गणितज्ञ भी कहा जाता है।

वराहमिहिर:

आचार्य वराहमिहिर का जन्म 499 ई. में अवन्ति (उज्जैन) के निकट कापित्थक नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम आदित्य दास था, जो इनके विद्यागुरु भी थे। इन्होंने अपने प्रसिद्ध कृति बृहज्जातक (बृ. जा.उप., अ.-9) के एक पद्य में अपने बारे में जानकारी दी है।

विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के नवरत्नों में से वराहमिहिर एक थे। वराहमिहिर आर्यभट्ट के समकालीन थे। वे कुसुमपुर (पटना) आर्यभट्ट से मिलने गये थे। इनकी प्रसिद्ध कृतियों में पञ्चसिद्धांतिका, बृहज्जातक, लघुजातक, बृहद्यात्रा, बृहत्संहिता इत्यादि प्रमुख हैं। पञ्चसिद्धांतिका में पाँच सिद्धांत हैं- रोलिश, रोमक, वशिष्ठ, सौर तथा पैतामह। इन पाँच सिद्धांतों में सौर सिद्धांत 'सूर्यसिद्धांत' के नाम से प्रचलित हैं। इसमें 14 अधिक्रम (अध्याय) हैं- मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, परिलेख, ग्रहयुति, नक्षत्र-ग्रहयुति, उदयास्त, श्रृङ्गोन्नति पात, भूगोल, ज्योतिषोपनिषद् और मान् त्रिकोणमिति का वर्णन इनकी प्रसिद्ध कृतियों-बृहज्जातक, बृहत्संहिता एवं पञ्चसिद्धांतिका में प्राप्त होता है।

त्रिकोणमिति की उत्पत्ति सूर्य सिद्धांत से मानी जाती है। जिसमें ज्या (Sine) को ज्या (Cosine) अनुलोम साईन (उत्क्रमज्या), टैन्जेन्ट (Tangent) सेकेन्ट (Secant) इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

गणित-ज्योतिष के साथ ही फलित ज्योतिष की पुस्तक बृहज्जातक प्रसिद्ध है। अलबेरूनी (Alberuni) वराहमिहिर के ज्ञान को सत्य पर आश्रित मानता है।

बृहत्संहिता 105 अध्यायों में विभक्त है जिसमें 4000 पद्यों का उल्लेख है। प्रस्तुत ग्रंथ में बहुत सी वैज्ञानिकतापूर्ण तथ्यों का विवरण प्राप्त होता है। जैसे अध्याय 21 से 28 में वृष्टि और वायु का विवेचन किया है जो कृषि विज्ञान और वृष्टिविज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक काल में भी उपादेय है। 29 से 39 अध्यायों में भूमि सम्बन्धित भूकम्प इत्यादि एवं अन्तरिक्ष में इन्द्रधनुष इत्यादि का वर्णन है। 53 वाँ अध्याय 'वास्तुविद्याध्याय' के नाम से प्रसिद्ध है। 54 वाँ अध्याय को 'दकार्गलाध्याय' के नाम से जाना जाता है। दक का अर्थ है जल और अर्गल का अर्थ लकड़ी। इसमें भूमि के अन्तर्गत जल की जानकारी अर्थात् 'जलोत्पत्तिमान' को बताया गया है। किस स्थान पर खारा जल और किस स्थान पर मीठा जल होगा। इसका विभिन्न प्रकार के वृक्षों के माध्यम से बताया है। कहाँ पर कितने फीट पर पानी मिलेगा इसका भी वर्णन है जो वैज्ञानिक रीति में प्रयोग किया जा सकता है। जल संरक्षण के सिद्धांत भी यहाँ प्राप्त होता है।

भास्कराचार्यः

भास्कराचार्य द्वितीय की अलौकिक प्रतिभा एवं गणित विषयक प्रकाण्ड विद्वता प्राचीन भारतीय गणितज्ञों में उनकी श्रेष्ठता को साबित करता है। इनका जन्म सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जडवीड नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम महेश्वर था तथा इनका जन्म काल 1036 शक (1114 ई०) माना जाता है। मात्र 36 वर्ष की अल्पायु में इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सिद्धान्तशिरोमणि' की रचना की तथा इन्होंने स्वयं अपने इस ग्रन्थ पर 'वासनाभाष्य' लिखा।

'सिद्धान्तशिरोमणि' ज्योतिष सिद्धान्त एवं खगोलगणित का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 3 अन्य ग्रन्थों की रचना की जिसमें 1. लीलावती, 2. बीजगणित, 3. करणकुतूहल इत्यादि प्रमुख ग्रन्थ हैं।

1. लीलावती - नामक अपनी प्रसिद्ध कृति में भास्कराचार्य ने अङ्कगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री का नाम था। यह ग्रन्थ 'पाटीगणित तथा क्षेत्रमिति' (मेन्सुरेशन) का सम्मिलित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 278 पद्य हैं। लीलावती में गणित विषयक निम्न प्रकरणों का सन्निवेश है-

पूर्णाङ्क और भिन्न, त्रैराशिक, ब्याज, व्यापार गणित, मिश्रण, श्रेणियाँ और श्रेणियाँ क्रमचय (Permutations), मापिकी और बीजगणित।

2. बीजगणित - इसमें 5 प्रकरण हैं- करणियाँ, शून्यगणित, सरल समीकरण, वर्गसमीकरण तथा कुट्टक। इस ग्रन्थ के आरम्भ में बीजगणित की उपयोगिता का वर्णन है। अंकगणित की सुव्यवस्था के लिए बीजगणित की सत्ता आवश्यक है। बीजगणित में भास्कर ने ब्रह्मगुप्त को अपना गुरु माना था। इन्होंने ज्यादातर ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्तों को ही आगे बढ़ाया। बीजगणित में समीकरण को हल करने के लिए उन्होंने चक्रवाल का तरीका अपनाया। वह इनका एक महत्त्वपूर्ण योगदान था। किसी गोलार्द्ध का क्षेत्र और आयतन निश्चित करने के लिए समाकलन गणित द्वारा निकालने का वर्णन प्रथमतया इस पुस्तक में हुआ है। इसमें त्रिकोणमिति के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र, प्रमेय तथा 'क्रमचय' और 'संचय' का विवरण मिलता है।

3. करणकुतूहल-खगोल विज्ञान की गणना एवं पंचांग विधि का निर्माण इत्यादि विषयों का वर्णन करणकुतूहल नामक ग्रन्थ में है। भास्कराचार्य (द्वितीय) का गणित के क्षेत्र में अन्य प्रमुख अवदान निम्न है।

- सर्वप्रथम इन्होंने ही अंकगणित क्रियाओं का 'अपरिमेय राशियों' में प्रयोग किया।
- गणित को इनकी सर्वोत्तम देन 'चक्रीय विधि' द्वारा आविष्कृत, अनिश्चित एकघातीय और वर्गसमीकरण के व्यापक हल हैं।
- भास्कर को अनंत तथा कल के कुछ सूत्रों का ज्ञान था। इसके अतिरिक्त इन्होंने किसी फलन के अवकल को 'तात्कालिक गति' का नाम दिया और सिद्ध किया कि-

$$d\ (\text{ज्या } q) = (\text{कोटिज्या } \varphi).\ dq$$

$$d\ (\text{ज्या } (\varphi)) = (\text{कोटिज्या } \varphi).\ d\,\varphi$$

इन्होंने प्रथमतया दशमलव प्रणाली की क्रमिक रूप से व्याख्या की।

आर्यभट्ट प्रथम :

गणितशास्त्र और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में आर्यभट्ट प्रथम एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न युगद्रष्टा के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इनका इन्म 476 ई० में कुसुमपुर (पटना) में हुआ। इन्होंने 23 वर्ष की अल्पायु में गणितशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'आर्यभटीयम्' लिखा जो इन्हीं के नाम पर है। इसकी रचना पद्धति वैज्ञानिक है तथा भाषा संक्षिप्त है। 'आर्यभटीयम्' चार भागों (पादों) में विभक्त है- (1) गीतिकापाद, (2) गणितपाद, (3) कालक्रियापाद, (4) गोलपाद। इसमें सम्पूर्ण 121 श्लोक हैं। इसके प्रथम दो पादों में मुख्यतः अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति का वर्णन किया गया है जिसमें वर्णमालाओं के साथ संख्या लिखने की पद्धति, सामान्य एवं द्विघात समीकरण (Quadratic Equations), कुट्टक पद्धति, त्रैराशिक नियम, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, शंकु (Cone), वृत्त-परिधि-व्यास प्रमाण अर्थात् पाई (ग) का मूल्य आदि सम्मिलित हैं। शेष दो पादों (कालक्रियापाद और गोलपाद) में खगोलीय सिद्धान्तों जैसे पृथ्वी का दैनिक भ्रमण, युग, वर्ष, मास, दिवस इत्यादि की गणना एवं ग्रहगति नियम का प्रतिपादन किया गया है। आर्यभटीयम् में संख्या लेखन पद्धति की वैज्ञानिकता का उल्लेख निम्न प्रकार है-

जैसे वर्ण 'क' से लेकर 'म' तक के अक्षर क्रमशः 1 से लेकर 25 तक की संख्याओं के द्योतक हैं। गीतिकापाद के पद्य सं. 2 में ङ और म मिलकर 'य' बनता है (5 + 25 = 30)(ङ) + (म) = य। इस प्रकार 'य' का मान 30 प्राप्त होता है। इसके बाद 'ह' कार तक के सभी वर्गों के मूल्य में 10 की वृद्धि होती है। जैसे-

(य= 30, र = 40 ल= 50, व = 60 श = 70 ष= 80, स = 90 ह= 100)

स्वरों के मूल्य इस प्रकार हैं-

(अ= 1, इ = 100 , उ =100^2, ऋ = 100^3 , लृ= 100^4, ए = 100^5, ऐ= 100^6, ओ = 100^7, औ =100^8)

वर्गमूल की संक्षिप्त पद्धति गणितपाद के पद्य सं. (4) में वर्णित है। पाई (ग) का सूक्ष्म मान 'आर्यभटीयम्' के गणितपाद के पद्य सं. (10) में आर्यभट ने बताया है जो निम्न प्रकार है-

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणां। अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।।

अर्थात् 100 + 4 = 104 x 8 = 832

द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणां = 62000

वृत्त की परिधि = 62000 + 832= 62832

व्यास = अयुतद्वय 10,000 x 2 = 20,000

पाई (π) = $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{62832}{20000}$ = 3.1416

प्रस्तुत पाई (π) का मूल्य वैश्विक स्तर पर प्रमाणिक माना गया है।

घनमूल की संक्षिप्त सूत्र पद्धति गणितपाद के पद्य सं. (5) में वर्णित है।

आर्यभट्ट ने त्रैराशिक नियम (Rule of three) का सूत्र गणितपाद के 26वें पद्म में बताया है। नीलकण्ठ सोमयाजी (1443-1543 ई.) ने 'आर्यभट्टीय भाष्य' लिखा गया है।

अध्याय : 04

एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र के अनुप्रयोग

एकन्यूनेन :-

जिस संख्या को 1 कम करना होता है उस संख्या के नीचे एक बिन्दु (•) लगा देते हैं। इस बिन्दु एकन्यूनेन का चिह्न कहा जाता है।

एकन्यूनेन :- एक कम करना

संख्या	एकन्यूनेन सङ्केत	नवीन संख्या
3 का एकन्यूनेन	3	2
234 में 3 का एकन्यूनेन	234	224
134 में 4 का एकन्यूनेन	134	133

एकन्यूनेन पूर्वेण (पूर्व से एक कम) :- एकन्यूनेन पूर्वेण दो शब्द "एकन्यूनेन"और "पूर्वे" से बना है, जिसका अर्थ "पूर्व से एक कम" है। निम्नलिखित को ध्यान पूर्वक देखें एवं समझकर सारणी को पूर्ण करें।

उदाहरण : नीचे दी गई सारणी में एकन्यूनेन पूर्वेण कर लिखिए :-

संख्या	एकन्यूनेन पूर्वेण सङ्केत	नवीन संख्या
234 में 3 का एकन्यूनेन पूर्वेण	234	134
246 में 6 का एकन्यूनेन पूर्वेण	246	236
731 में 3 का एकन्यूनेन पूर्वेण	731	
543 में 4 का एकन्यूनेन पूर्वेण		
714 में 1 का एकन्यूनेन पूर्वेण		
241 में 4 का एकन्यूनेन पूर्वेण		
342 में 4 का एकन्यूनेन पूर्वेण		
782 में 2 का एकन्यूनेन पूर्वेण		772

परममित्र अंक:

जिन दो अङ्कों को आपस में जोड़ने पर योग 10 आए , वे अङ्क परस्पर परममित्र अङ्क होते हैं। जैसे - 8 का परममित्र अङ्क 2 होता है। इसी प्रकार 7 का परममित्र अङ्क 3 होता है।

करो और सीखो: निम्न अङ्कों के परम्मित्र अङ्क लिखकर सारणी को पूर्ण करें ।

अङ्क	परममित्र अङ्क	अङ्क	परममित्र अङ्क
1	9	4	
7		5	
6		2	
3		6	

एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र द्वारा व्यवकलन:

उदाहरण : 85 में से 26 को व्यवकलित (अन्तर) कीजिए।

हल:

85
− 26
59

सङ्केत

(i) 5 में से 6 नहीं घटता है अतः 6 का परममित्र 4 है अब 4 को 5 में जोड़ते है और 4 + 5 = 9 परिणाम में नीचे लिखते हैं।

(ii) ऊपर 5 के पूर्व अङ्क 8 में एक न्यूनेन का चिह्न लगाएंगे।

(iii) (8̣= 7) 7 में से 2 घटता है अतः 7 – 2 = 5 परिणाम में दहाई के स्थान पर नीचे लिखेंगे।

उदाहरण : 546 में से 287 घटाइये।

हल:

546
– 287
259

सङ्केत

(i) 6 में से 7 नहीं घटता है अतः 7 का परममित्र अङ्क 3 है अब 6 और परममित्र अङ्क 3 का योग 6 + 3 = 9 नीचे लिखेंगे।

(ii) 6 के पूर्व 4 पर एकन्यूनेन का चिह्न लगाएंगे।

(iii) (4 = 3) 3 में से 8 नहीं घटता है अब 8 नहीं घटता है अब 8 का परममित्र अङ्क 2 है। अतः (4 = 3) 3 को और परममित्र अङ्क 2 को योग कर 3 + 2 = 5 नीचे लिखेंगे।

(iv) 4 के पूर्व अङ्क 5 पर एकन्यूनेन चिह्न लगाएंगे। अतः (5 = 4) 4 में से 2 घटता अब 4 – 2 = 2 को नीचे लिखिए।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित बहुविकल्पीय प्रश्नों के सही विकल्प का चयन कीजिये।

(अ) संख्या 14 का एकन्यूनेन होगा-

(I) 11 (II) 13 (III) 12 (IV) इनमें से कोई नहीं

(ब) संख्या 134 में 3 का एकाधिकेन पूर्वेण का संकेत होगा-

(I) $\underset{\cdot}{1}34$ (II) 134 (III) 134 (IV) इनमें से कोई नहीं

(स) संख्या 348 में 4 का एकन्यूनेन पूर्वेण करने पर नवीन संख्या ………. बनती है।

(I) 338 (II) 248 (III) 347 (IV) इनमें से कोई नहीं

1) नीचे दी गई संख्याओं के एकन्यून संख्या लिखिए :-

(i) 234 (ii) 133 (iii) 15 (iv) 18

2) नीचे दी गई संख्या में एकन्यूनेन पूर्वेण संख्या लिखिए :-

(i) 248 में अङ्क 4 का (ii) 1345 में अङ्क 4 का

(iii) 1280 में अङ्क 8 का (iv) 3467 में अङ्क 6 का

(v) 3421 में अङ्क 1 का (vi) 3217 में अङ्क 1 का

3) एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र से व्यवकलन (अन्तर) कीजिए।

(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)
43	84	56	568	842
– 17	– 57	– 39	– 279	+ 384
______	______	______	______	______

एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र के प्रयोग द्वारा गुणन सङ्क्रिया

एक न्यूनेन पूर्वेण दो संख्याओं के गुणन में जब एक संख्या का प्रत्येक अङ्क हो 9, तो गुणा करने की इस अद्भुत विधि का प्रयोग किया जाता है ।

विधि – गुणनफल के दो पक्ष होते हैं ।

बायाँ पक्ष = गुण्य – 1

दायाँ पक्ष = गुणक – बायाँ पक्ष

अत: गुण्य × गुणक = गुण्य – 1 / गुणक – बायाँ पक्ष

यह सूत्र तीन परिस्थितियों में काम करता है ।

1) प्रथम स्थिति : (गुणक अङ्क संख्या = गुण्य अङ्क संख्या)

देखिए निम्न उदाहरण

उदाहरण : गुणन करें- 8 × 9

हल: बायाँ पक्ष = 8 – 1 = 7

दायाँ पक्ष = 9 – 7 = 2

अत : $8 \times 9 = 8 - 1 / 9 - 7$

$= 7 / 2$

$= 72$

उदाहरण: गुणन करें 345×999

हल :345×999

$= 345 - 1 / 999 - 344$

$= 344 / 655$

$= 344655$

2) द्वितीय स्थिति : गुणक अङ्क संख्या > गुण्य अङ्क संख्या

उदाहरण : गुणन करें- 34×999

हल :34×999

$= 034 - 1 / 999 - 033$

$= 33 / 966$

$= 33966$

उदाहरण : गुणन करें- 254×99999

हल : 254×99999

$= 254 - 1 / 99999 - 00253$

$= 253 / 99746$

$= 25399746$

ध्यान रखें –

1) गुणक संख्या के जितने अङ्क गुण्य संख्या से अधिक होते हैं उतने ही 9 के अङ्क गुणनफल के मध्य होते हैं ।

2) शेष वाम पक्ष और दाहिने पक्ष के क्रमानुसार अङ्कों का योग 9 होता है अर्थात्

वाम पक्ष प्रथम अङ्क + दायाँ पक्ष का अङ्क = 9

3) तृतीय स्थिति : (गुणक अङ्क संख्या < गुण्य अङ्क संख्या)

उदाहरण : गुणन करें -53 × 9

हल : 53 × 9

=) 53 – 1) / 9 – 52

= 52/ – 43

= 477

उदाहरण : गुणन करें- 312 × 99

हल : 312 × 99

= 312 – 1 / 99 – 311

= 311 /– 212

3+

= 308 / 88

अन्य विधि (जब गुणक में 9 के अंक हो।) :

यह विधि गुणन की उपर्युक्त तीनों स्थिति में लागु होगी।

चरण 1: गुणक में 9 की संख्या होने पर जितने 9 के अङ्क हो, उतने ही शून्य गुण्य में लगाये।

चरण 2: चरण 1 से प्राप्त संख्या में से मूल गुण्य को घटाये।

चरण 3: घटाने पर प्राप्त संख्या दी गई संख्याओं का गुणनफल हैं।

उदाहरण: गुणन करें- 312 × 99

हल: 3 1 2 0 0

– 3 1 2

= 3 0 8 8 8

उदाहरण: गुणन करें- 312 × 9999

हल: 3 1 2 0 0 0 0

– 3 1 2

= 3 6 9 1 1 8 8

करो और सीखो –

निम्न के गुणनफल ज्ञात करें। (एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र के प्रयोग से)

1) 32× 999 2) 311 2× 99 3) 121 × 999

4) 2× 999 5) 452 × 99 6) 951 × 999

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित रिक्त-स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(अ) एकाधिकेन सूत्र का अर्थ .... है।

(ब) एकन्यूनेन पूर्वेण सूत्र का अर्थ .... है।

(स) संख्या 8 का परममित्र अंक ....है।

(द) 456× 999 .... =

(प) 456× 99999 .... =

(फ) 4568× 99 .... =

2. सूत्र एकन्यूनेन पूर्वेण विधि गुणा कीजिए ।

1) 99 × 52 2) 173 × 999

3) 47 × 999 4) 134 × 9999

5) 72 × 9 6) 123 × 99

अध्याय : 05

निखिलं नवत: चरमं दशत: सूत्र के अनुप्रयोग

निखिलं नवत: चरमं दशत सूत्र द्वारा व्यवकलन, आधार संख्या से कम होने पर दो संख्याओं का गुणनफल, आधार संख्या से अधिक की दो संख्याओं का गुणनफल, आधार संख्या से कम तथा अधिक होने पर दो संख्याओं का गुणनफल ।

निखिल अंक : किसी भी दी गई संख्या के चरमाङ्क (चरम् अंक) को छोड़कर अन्य अंक उस संख्या के निखिल अंक होते हैं।

जैसे: 4152 का निखिल अंक 415 है।

निखिलम् नवतसूत्र :चरमं दशत : द्वारा गुणन -

अर्थ – इस सूत्र का तात्पर्य 'सभी नौ से और अन्तिम दस' से है । प्राचीन भारतीय गणित में 9 को ब्रह्म अङ्क तथा 10 को पूर्ण अङ्क कहते हैं । यह सूत्र विनकुलम् , व्यवकलन (अन्तर), गुणन एवं भाग से सम्बन्धित अनेकों स्थिति में प्रयोग किया जाता है।अनुप्रयोग –

जब दो संख्याओं आधार 10 या 100 या 10 की घात के निकट होता है, तो उनका गुणनफल निखिलम् सूत्र के आधार पर बड़ी सरलता से किया जा सकता है ।

विधि –

1) संख्याओं के अनुसार निकटतम आधार 10 या 100 चुनिए ।
2) आधार के सापेक्ष विचलनों को उनकी संख्या के सामने लिखिए ।
3) तिरछी रेखा से गुणनफल स्थान के दो भाग कीजिए ।
4) दाहिने पक्ष के विचलनों का गुणनफल लिखिए ।
5) वाम पक्ष में एक संख्या + दूसरी संख्या का विचलन लिखिए ।
6) आधार में जितने शून्य उतने ही अङ्क दाहिने पक्ष में रखिए अङ्क संख्या की कमी 0 लिखकर पूरी कीजिए यदि अङ्क अधिक हो तो बायें पक्ष में जोड़िये ।

7) विचलनों का गुणनफल यदि ऋणात्मक हो तो बायें पक्ष से एक आदि लेकर धनात्मक रूप में बदलिए ।

1) **ध्यान रहे** – बायें पक्ष से आये एक का मान दाहिने पक्ष के आधार के बराबर होता है ।

आइए , उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं ।

- **आधार संख्या से कम होने पर दो संख्याओं का गुणनफल:**
    - **जब आधार 100 हो-**

2) गुणा करें: 92 × 93

हल : 9 2 –08

× 9 3 –07

92 –7/) – 8(× –) 7(

85 / 56

= 8556

अत 92 :× 93 = 8556

सङ्केत–

1) विचलन = – 08, – 07

2) दायें पक्ष में दो अङ्क अत: 56 को लिखें ।

3) बायें पक्ष में 92 – 7 या 93 – 8 लेते हैं ।

- **आधार संख्या से अधिक की दो संख्याओं का गुणनफल:**

उदाहरण: निखिलम् नवत: चरमं दशत: (आधार 10 एवं 100) विधि से गुणा कीजिए ।

जब आधार 10 हो

- (1 गुणा करें 13 :× 12

हल :

	3 1	+ 3
×	1 2	+ 2

13 + 2 / 3 × 2

15 / 6

= 156

अत 13 :× 12 = 156

सङ्केत–

1) विचलन = +3, +2

2) बायें पक्ष में 13 + 2 या 12 + 3 लेते हैं ।

3) दायें पक्ष में विचलनों का गुणन

=) 6एक अंक (

- **आधार संख्या से कम तथा अधिक होने पर दो संख्याओं का गुणनफल :**

(3 गुणा करें - 93 × 102

हल:

	3 9	– 7
×	1 0 2	+ 2

93 + 2 /) –7(× 2

95 / – 14

1+

14 – 100 / 94

86 / 94

= 9486

सङ्केत–

1) गुणनफल

95 /– 14

2) बायें पक्ष से 1 दायें पक्ष में लाइये।

3) दायें पक्ष में 1 का स्थानीयमान = 100

आनुरूप्येण सूत्र द्वारा गुणन :

किसी प्रश्न में विचलन बड़े प्राप्त होने से उनका गुणा करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में **उपाधार की सङ्कल्पना** का प्रयोग करते हैं। आनुरूप्येण सूत्र के प्रयोग से उपाधार अङ्क का गुणा बायें पक्ष में किया जाता है एवं दायाँ पक्ष पूर्ववत् समान रहता है। आइए , उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं ।

उदाहरण : निखिलम् नवत: चरमं दशत: (उपाधार विधि) से गुणा कीजिए ।

सङ्केत –

1) **उपाधार = 10 × 6**

आधार अंक = 6

2) **बायें पक्ष में उपाधार अंक 6 का गुणा = 71 × 6 = 426**

3) **उसके बाद दायें पक्ष का समायोजन करना चाहिए ।**

उदाहरण : निखिलम् नवत: चरमं दशत: (उपाधार विधि) से गुणा कीजिए ।

1(गुणा करें: 32 × 34

हल: 2 3 + 2

× 3 4 + 4

32 + 4 / 2 × 4

36 × 3 / 8

108 / 8

= 1088

अत :32 × 34 = 1088

सङ्केत–

1) आधार = 10

उपाधार = 3 × 10 = 30

आधार अंक = 3

2) उपाधार विचलन = + 2 एवं + 4

3) बायें पक्ष में उपाधार अंक 3 का गुणा

= 36 × 3 = 1088

उदाहरण: गुणा करें- 64 × 67

हल: 6 4 + 4

$\times$ 6 7 + 7

(64 + 7) × 6 / 4 × 7

71 × 6 / 28

426 + 2 / 8

= 4288

अत :64 × 67 = 4288

उदाहरण: गुणा करें- 306 × 312

हल: 30 6 + 6

× 3 1 2 + 12

318 × 3 / 72

954 / 72

= 95472

अत :306 × 312 = 95472

सङ्केत–

1) **आधार = 100**

2) **उपाधार = 100 × 3**

उपाधार अङ्क = 3

3) **विचलन = +6 तथा +12**

अभ्यास प्रश्न

1. सूत्र निखिलम् नवत: चरमं दशत: द्वारा गुणा कीजिए ।

अ) 103 × 107	ब) 94 × 95	स) 108 × 105	द) 96 × 93
प) 73 × 74	फ) 203 × 204	भ) 506 × 504	म) 810 × 804
य) 302 × 312	र) 88 × 83	ल) 716 × 711	म) 407 × 412

निखिलं नवत: चरमं दशत सूत्र द्वारा व्यवकलन

अध्याय : 06

वेदी मापन का गणित (स्मार्त यज्ञ)-

भूमिका, स्मार्त यज्ञों के अन्तर्गत आने वाले वेदी, मेखला एवं मण्डप मापन का गणित एवं प्रयोग यज्ञ कुंड का आकार और आकार यज्ञ के सफल समापन के लिए महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। वैदिक साहित्य में उनके प्रकार, आकार, आकार और निर्माण के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। यज्ञ कुंड का आकार और आकार विशिष्ट आध्यात्मिक या भौतिकवादी परिणामों के लिए कुंड के निर्माण में मदद करता है जिसके लिए यज्ञ कुंड के विशिष्ट गणितीय माप की आवश्यकता होती है। यज्ञ कुंड का आकार यज्ञ के उद्देश्य के आधार पर तय किया जाता है, जबकि आकार आग को दिए गए कुल प्रसाद के आधार पर तय किया जाता है। कुंड के आकार और आकार पर आध्यात्मिक और गणितीय पहलुओं को अध्ययन में प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन विश्लेषण के दौरान, यह देखा गया कि वैदिक ग्रंथों ने यज्ञ कुंड के निर्माण में ज्योतिष, त्रिकोणमिति, ज्यामिति आदि जैसी विभिन्न धाराओं से गणितीय ज्ञान का उपयोग किया। यज्ञ कुंड का आकार सीधे तौर पर किए जाने वाले प्रसाद की संख्या के बराबर है। इसके अलावा, किसी भी यज्ञ कुंड के निर्माण के दौरान, सबसे पहले एक वृत्त बनाया जाता है जिसका पैरामीटर किए जाने वाले प्रसाद की संख्या के लिए तय किया जाता है, फिर एक विशेष यज्ञ कुंड का निर्माण किया जाता है। आकार चाहे जो भी हो, प्राचीन ग्रंथों में दिए गए व्यास के आधार पर कुंड के निर्माण के परिणामस्वरूप समान सतह क्षेत्र और विशेष संख्या में प्रसाद के लिए मात्रा, यज्ञ कुंड निर्माण में शामिल ठीक गणित के आगे के अध्ययन के लिए एक द्वार खोलती है।

यज्ञशाला कुण्ड परिमाण

स्मार्त कर्मकाण्ड विधानों में याज्ञिक प्रक्रिया को सविधि सम्पन्न करने के लिए शुल्वसूत्रों के आधार पर निर्मित ग्रन्थों में **''मण्डपकुण्डसिद्धि''** आदि अनेक ग्रन्थों में कुण्डों के परिमाण का प्रमाण प्राप्त होता है। इन्ही ग्रन्थों के आधार पर कुण्डों की आकृतियाँ एवं विस्तार का वर्णन भी मिलता है।

यथा

प्राच्यात्रिकोणवृत्ताखण्डणभगेन्दुचतुष्को :ङ्गभुजाम्बुजानि।

अष्टास्त्रि शक्रेश्वरयोस्तुमध्ये वेदास्त्रिवावृत्तमुशन्तिकुण्डम्।।

(2/1 सिद्धिपमकुण्डमण्ड)

अर्थात् सम्पूर्ण यज्ञशालाके नवखण्डों में प्रत्येक खण्ड के अलग-अलग आकृतियों के कुण्ड बनाने का विधान प्राप्त है।

जैसे -

1.	पूर्व	-	चतुरस्त्रकुण्ड
2.	आग्नेय	-	योनीकुण्ड
3.	दक्षिण	-	अर्धचन्द्रकुण्ड
4.	नैऋत्य	-	त्रिकोणकुण्ड
5.	पश्चिम	-	वृत्तकुण्ड
6.	वायव्य	-	षडस्त्रकुण्ड
7.	उत्तर	-	पद्मकुण्ड
8.	ईशान	-	अष्टास्त्रकुण्ड
9.	मध्य	-	चतुरस्त्रकुण्ड

नवकुण्डी पक्ष विधान में कुल कुण्डों कि आकृतियाँ आठ (8) प्रकार की होती है एवं दो (2) चतुरस्त्रकुण्डों का निर्माण होता है। इन आकृतियों में कुण्डों के विस्तार का परिमाण करते हुए ग्रन्थकार ने एक हस्त से लगाकर दस हस्त तक के कुण्डों का विधान बताया है। यथा-

शतार्धे रत्नि स्याच्छतपरिमितेऽरत्निविततं

सहस्त्रे हस्तं स्यादयुतहवने हस्तयुगले।

चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षड्करमितं

ककुब्भिर्वा कोटौ नृपकरमिति प्राहुरपरे।।

(2/5 पसिद्धिमण्डकुण्ड)

अर्थात् कुण्डों का विस्तार आहुति संख्याओं के आधार पर भी बनाने का विधान है।

कुण्ड के पाँच अङ्ग बताये गये है

–

गर्त, मेखला, योनी, कण्ठ तथा नाभि।

इन पाँचों से समन्वित यज्ञीय स्थान विशेष को कुण्ड कि संज्ञा प्रदान कि गई है।

कुण्डों के आकृतियों में विभिन्न आकृतियों का विधान अनेक फलश्रुतियों को भी कहता है।

सिद्धि शान्तिर्मृतिच्छिदे। :शुभं शत्रुनाश :पुत्रा :

वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके।।

(2/4 पसिद्धिमण्डकुण्ड)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान में नवनिर्मित यज्ञशाला में समस्त कुण्डों को चतुर्हस्त प्रमाण से निर्मित किया गया है। क्रमानुसार कुण्डों का माप निम्न प्रकार से है-

१. **चतुरस्त्रकुण्ड -** हाथ 4 = 48 अंगुल वर्तमान के आधुनिक माप में 48 अंगुल = 36 इंच का चतुरस्त्र निर्मित है। इसमें चतुरस्त्र की गहराई+लम्बाई+चौड़ाई 48 अंगुल = 36 इंच।

२. **योनिकुण्ड** –योनिकुण्ड का आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल एवं आकृति व्यासार्ध 17 अंगुल, व्यास -34 अंगुल, वर्धन-10 अंगुल, बृहत्लम्ब – 34 अंगुल अर्थात् सम्पूर्ण योनिकुण्ड के अन्दर का बृहत्लम्ब 43 इंच है।

३. **अर्धचन्द्र** – आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल =क्षेत्र= 48 अंगुल, व्यासार्ध – 38 अंगुल, व्यास 76 अंगुल, वृत्त 38 अंगुल = लम्बाई 54 इंच लम्बमान।

४. **त्रिकोणकुण्ड** – आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, अग्रवृद्धि 16 अंगुल श्रोणी वृद्धि 12 अंगुल लम्बमान 48 इंच।

५. **वृत्तकुण्ड** – आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, व्यासार्ध 27 अंगुल सम्पूर्ण व्यास 54 अंगुल, मध्य से वृत्त 27 अंगुल बराबर 19.05 इंच लम्ब का वृत्त।

६. **षडस्त्रकुण्ड-** षडस्त्रकुण्ड दो प्रकार के आकृतियों से होता है समषडस्त्र एवं विषमषडस्त्र । निर्मित विषमषडस्त्र का मान आधार चतुरस्त्र 48 अंगुल, व्यासार्ध 36 अंगुल, बृहत्लम्ब 54 अंगुल 6 यव, बराबर 40.5 इंच।

७. **पद्मकुण्ड** – आधार क्षेत्रफल चतुरस्र 48 अंगुल, प्रथमवृत्त 6 अंगुल, पञ्चम व्यासार्ध 29 अंगुल एवं पञ्चमव्यास 59 अंगुल 5 यव 4 युका, बराबर पद्म से पद्म का लम्बमान 36 इंच अर्थात् चतुर्थव्यास।

८. **समअष्टास्र**- आधार चतुरस्र 48 अंगुल, व्यासार्ध 28 अंगुल 4 यव 6 युका, भुज 21 अंगुल 6 यव 1 युका एवं लम्बमान 26 अंगुल 3 यव 3 युका बराबर 36 इंच।

परिधिमान (मेखला)

कुण्डमण्डपादि ग्रन्थों में त्रिमेखला को श्रेष्ठ माना गया है।

यथा -

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डंश्रेष्ठं त्रिमेखलम। (कुण्डमण्डपसिद्धि)

कुण्डमण्डपग्रन्थानुसार तिनों मेखलाओं का मान भिन्न-भिन्न बताया गया है तथापि वासिष्ठि पद्धत्यानुसार समस्त मेखलाओं का मान समान भी किया गया है।

'षडंशेनैव विस्तृता: तिस्रोमेखला स्यु: एतदुक्तं भवति' ।।

उस मान से कुण्ड के क्षेत्रफल का छठा हिस्सा मेखलाओं का मान होता है अत: 48 अंगुल के क्षेत्रफल के कुण्डों में षष्ठांश बराबर 8 अंगुल =6 इंच समस्त मेखलाओं का मान स्वीकार किया गया है।

योनीमान

समस्त कुण्डों में योनि का मान 'योनिव्यासार्धदीर्घा' सूत्रानुसार 48 अंगुल के अर्धमान अर्थात 24 अंगुल के वर्गक्षेत्रफल में योनि का निर्माण किया गया है। क्योंकि समस्त कुण्डों का अधार चतुर्हस्त अर्थात 48 अंगुल को प्रमाण मानते हुए उनके व्यासार्ध से ही योनि का निर्माण किया गया है।

नाभिमान

नाभि का मान चतुर्हस्त कुण्ड के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के अनुसार 8 अंगुल सम्पूर्ण क्षेत्रफल एवं 4 अंगुल उच्छ्रिति अर्थात् उंचाई होगी एवं नाभि कि आकृति सभी कुण्डों में 'पद्माकार अथवा कुण्डसदृशा नाभि:' वचनानुसार समस्त कुण्डों कि नाभि कुण्डाकार भी हो सकती है एवं सभी पद्माकार भी हो सकती है।

नवनिर्मित यज्ञशाला में उपर्युक्त वचनानुसार समस्त कुण्डों कि नाभियाँ पद्माकार आकृतियों में निर्मित कि गयी है।

निष्कर्ष

यज्ञ कुंड की रचना और निर्माण के लिए बहुत वैज्ञानिक और कठोर गणितीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। भारतीय ऋषि ने बहुत ही अच्छे गणितीय मॉडल के साथ यज्ञ कुंड निर्माण के विज्ञान का विकास किया था और वे महान वैज्ञानिक थे। उन्होंने यज्ञ कुंड की तैयारी के लिए वैदिक गणितीय सूत्रीकरण प्रदान किया जो वर्तमान समय अवधि में भी सच है। आकारों के बावजूद कुल आयतन और सतह क्षेत्र समान रहा। यज्ञ कुंड के विभिन्न आकारों के अलग-अलग उद्देश्य हैं क्योंकि उनका उद्देश्य विभिन्न यज्ञ कुंड आकारों की मदद से अलग-अलग ऊर्जा का उत्पादन करना था। विशिष्ट उद्देश्यों के लिए विभिन्न आकारों के ऊर्जा विज्ञान और प्रोटोकॉल इस पेपर के दायरे से बाहर हैं, लेकिन यह इस वैदिक ज्ञान की गहन जांच की मांग करता है।

अध्याय : 07

आर्यभट्टीयम् गीतिकापाद -1

मंगलाचरण, संख्या विन्यास परिभाषा, ग्रहों के युगो में भगण।

आर्यभट्ट ने जिन-जिन विषयों को आर्यभट्टीयम् में बताया है वे सभी उनके बाद वाले आचार्यों द्वारा भी अपने अपने ग्रन्थों के आधार रुप में बताये हैं अर्थात् परवर्ति आचार्यों ने अपने ग्रन्थों का ढाँचा उन्हीं विषयों पर खड़ा किया है। आर्यभट द्वारा दिये गये आँकड़े भले ही समय के प्रभाव के कारण बदले हों लेकिन मूलाधार विषय वहीं रहे हैं। आर्यभट ने बहुत ही सूक्ष्म में बातों को कहा है। उनसे सम्बन्धित छोटी-छोटी गणित की अन्य क्रियाओं को नहीं कहा है जो उन विषयों से संबंधित होती हैं। आचार्य ने केवल ग्रहण तथा ग्रहस्पष्ट से संबंधित विषय ही कहे हैं, यद्यपि गणित पाद में कुछ गणित संबंधी अन्य विषय भी कहे हैं जो बीजगणित, रेखागणित से संबंधित हैं।

मंगलाचरण:

प्रणिपत्यैकमनेकं कं सत्यां देवतां परं ब्रह्म।
आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलम् ॥

आर्यभट् ने अपनी कृति 'आर्यभटीयम्' के दशगीतिका अध्याय (गीतिकापाद) के मङ्गलाचरण में संपूर्ण सृष्टि के आदि कारणरूप परब्रह्म को प्रणाम किया है। परब्रह्म कारणरूप में एक ही हैं तथा कार्यरूपों में विभिन्न प्रकार से प्रतिभासित होता है। वह सत्यरूपी देवता स्वयंभू एवं जगत् का मूलकारणरूप है। वही कारणरूप ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है। संपूर्ण जगत् के मूल में वही स्थित है तथा चराचर जगत् की सृष्टि उसी के द्वारा हुई है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश रूपी त्रिदेव के रूप में वही सर्वव्याप्त है। 'आर्यभटीयम्' में आर्यभट गीतिकापाद के अतिरिक्त गणितपाद, कालक्रियापाद एवं गोलपाद नामक तीन और अध्यायों का वर्णन करेंगे।

संख्या विन्यास परिभाषा:

किसी संख्या को जब अक्षर के रूप में व्यक्त किया जाता है उसे **'कूटाङ्क' या वर्णाङ्क** कहते हैं। गणितज्ञों ने इस सङ्कल्पना का प्रयोग संख्याओं को अभिव्यक्त करने में किया था। वर्णाङ्कों या 'कूटाङ्कों' का संस्कृत एवं वैदिक वाङ्मय का प्रयोग अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है।

आर्यभट्टीयम् (दशगीतिकापाद) के निम्न श्लोक में वर्णांक प्रणाली के बारे बताया गया है।

वर्गाक्षराणि वर्गेऽवर्गेऽवर्गाक्षराणि कात् ङ्मौ यः ।

खद्विनवके स्वरा नव वर्गेऽवर्गे नवान्त्यवर्गे वा ॥

(आर्यभट्टीयम्, दशगीतिका पाद -2)

अर्थात् , वर्गाक्षर (जिनका आरम्भ 'क' अक्षर से म तक होता है) वर्ग स्थानों में प्रयुक्त किए गए हैं और अवर्गाक्षर (य , र , ल , व , श , ष , स , ह) अवर्ग स्थानों में प्रयुक्त किये गये हैं। इस प्रकार ङ्मौ (ङ् + म) का मान वही है जो य् अक्षर का है। नौ स्वर शून्यों के वर्ग के लिए तथा अवर्ग स्थान वाले नौ जोड़ो के लिए प्रयुक्त किये गये हैं। नौ स्वरों (अ , इ , उ , ऋ , लृ , ए , ऐ , ओ , औ) का उपयोग नौ वर्ग स्थानों (विषम स्थानों) के लिए और नौ अवर्ग स्थानों (सम स्थानों) के लिए इस प्रकार मात्रा के लिए अठारह स्थान बताए गये हैं। आर्यभट्ट ने एक श्लोक में बड़ी-बड़ी संख्याओं को लिखने के लिए वर्णमाला के अक्षरों के उपयोग कर एक सर्वथा मौलिक विधि वर्णाङ्क प्रणाली का प्रतिपादन किया। इसके अनुसार वर्णमाला के अक्षरों को आर्यभट्ट ने अधोलिखित मान प्रदान किये ।

वर्गाक्षर व्यंजन सारणी: :

वर्ण	अङ्क	वर्ण	अङ्क	वर्ण	अङ्क	वर्ण	अङ्क	वर्ण	अङ्क
क	1	च	6	ट	11	त	16	प	21
ख	2	छ	7	ठ	12	थ	17	फ	22
ग	3	ज	8	ड	13	द	18	ब	23
घ	4	झ	9	ढ	14	ध	19	भ	24
ङ	5	ञ	10	ण	15	न	20	म	25

अवर्गाक्षर व्यंजन सारणी:

य	र	ल	व	श	ष	स	ह
30	40	50	60	70	80	90	100

वर्ग एवं अवर्ग स्वर सारणी:

वर्णाङ्क के रूप में अङ्क विद्या का प्रयोग -

इसका प्रयोग केवल वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो परस्पर मिलकर एक-दूसरे से सहमत होकर सङ्केतों को समझ लेते हैं। प्रेषक एवं प्रेप्य ही परस्पर शब्द व उससे प्राप्त सङ्केत को निश्चित कर लेते हैं।

जैसे -

स्वर	अ	इ	उ	ऋ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ
वर्ग	10^0	10^2	10^4	10^6	10^8	10^{10}	10^{12}	10^{14}	10^{16}
अवर्ग	10^1	10^3	10^5	10^7	10^9	10^{11}	10^{13}	10^{15}	10^{17}

निर्धारित वर्ण	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
अङ्क	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10

संख्याओं के लिए शब्दों / वर्णों का प्रयोग निम्न प्रकार सम्भव है -

कमल = क्×अ + म्×अ + ल्×अ = $1\times 10^0 + 25\times 10^0 + 50\times 10^1$

= $1\times 1 + 25\times 1 + 50\times 10$

= 1 + 25 + 500 = 526

इस विधि में बड़ी से बड़ी संख्या कुछ थोड़े से वर्णों में दी जाती है।

करो और सीखो -

निम्न शब्दों को अङ्कों में परिवर्तित करने पर कौन-सी संख्या बनेगी -

1. रमण = ... गणित = ...
2. अपने परिवारजनों के नाम को अङ्कों में लिखकर परिवारजनों से चर्चा करें।

ग्रहों के युगो में भगण:

युगरविभगणाः ख्युघृ शशि चयगियिङुशुछ्लृ कु ङिशिबुण्लृख्षृ प्राक्।

शनि ढुङ्विघ्व गुरु ख्रिच्युभ कुज भद्लिझ्नुखृ भृगुबुध सौराः ॥ (आर्यभट्टीयम् गीतिकापाद,3)

अन्वयः युगरविभगणाः, ख्युघृ, शशि, चयगियिङुशुछ्लृ, कु ङि शिबुण्लृख्पृ, प्राक्, शनि, ढुङ्खिघ्व, गुरु, खिच्युभ, कुज, भलिङ्नुख, भृगुबुधसौराः ।

एक महायुग (चतुर्युग 432 × 〚10 〛^4 में रवि भगण 43,20,000 चन्द्र भगण 5,77,53,336, भू (पृथ्वी) भगण पूर्व की ओर 1,58,22,37,500, शनि भगण 1,46,564, गुरु भगण 364,224, कुज (मंगल) भगण 22,96,824 होते हैं। बुध तथा शुक्र (भृगु) भगण सूर्य भगण के समान होते हैं अर्थात् 43,20,000 होते हैं। प्रस्तुत पद्य की व्याख्या निम्न प्रकार है-

1 महायुग = चतुर्युग

1. सतयुग = 17 ,28,000 वर्ष
2. त्रेतायुग= 12, 96000 वर्ष
3. द्वापरयुग = 8 ,64,000 वर्ष
4. कलियुग = 4 ,32,000 वर्ष = 43,20,000 वर्ष

- रवि (सूर्य) भगण = ख्युघृ

ख्युघृ = ख्+यु + घृ = ख्×उ + यु×उ + घ्×लृ

$= 2\times 10^4 + 30\times 10^4 + 4\times 10^6$

$= 2\times 10000 + 30\times 10000 + 4\times 1000000$

= 43,20,000

आर्यभट्ट ने ख्युघृ के द्वारा एक युग में सूर्य के भगणों की संख्या 43 लाख 20 हजार बतायी है। यहाँ 1 महायुग (चतुर्युग) = रविभगण

- शशि (चन्द्र) भगण = चयगियिङुशुछ्लृ

चयगियिङुशुछ्लृ = च + य + गि + यि + ङु + शु + छृ + लृ

$= 6 + 30 + 3\times 10^2 + 30\times 10^2 + 5\times 10^4 + 70\times 10^4 + 7\times 10^4 + 50\times 10^4$

$= 6 + 30 + 3\times 100 + 30\times 100 + 5\times 10000 + 70\times 10000 + 7\times 1000000 + 50\times 1000000$

= 5,77,53,336

आर्यभट्ट ने चयगियिङुशुछ्लृ के द्वारा एक युग में चन्द्र के भगणों की संख्या 5,77,53,336 बतायी है।

- पृथ्वी (कु) भगण = ङिशिबुण्लृख्षृ

ङिशिबुण्लृख्षृ = ङि+ शि + बु + (ण् +लृ) + (ख् +ऋ) + (ष+ऋ)

$= 5 \times 10^2 + 70 \times 10^2 + 23 \times 10^4 + 15 \times 10^8 + 2 \times 10^6 + 80 \times 10^6$

$= 5\times 100 + 70\times 100 + 23\times 10000 + 15 \times 100000000 + 2 \times 1000000 + 80 \times 1000000$

= 500 +7000 + 230000 + 1500000000 + 2000000 + 80000000

= 1,58,22,37,500

आर्यभट्ट ने ङिशिबुण्लृख्षृ के द्वारा एक युग में पृथ्वी के भगणों की संख्या 1,58,22,37,500 बतायी है।

- शनि भगण = ढुङ्विध्व

ढुङ्विध्व = (ढ+उ)+ (ङ्+इ) + (वि+इ) + घ + व

$= 14 \times 10^4 + 5 \times 10^2 + 60\times 10^2 + 4 + 60$

$= 14\times 10000 + 5\times 100 + 60\times 100 + 4 + 60$

= 140000 +500 + 6000 + 4 + 60

= 1,46,564

आर्यभट्ट ने ढुङ्विध्व के द्वारा एक युग में पृथ्वी के भगणों की संख्या 1,46,564 बतायी है।

- गुरु भगण = ख्रिच्युभ

ख्रिच्युभ = (ख+इ)+ (र+इ) + (च+उ) + (य+उ) + भ

$= 2 \times 10^2 + 40 \times 10^2 + 6\times 10^4 + 30 \times 10^4 + 24$

$= 2\times 100 + 40 \times 100 + 6\times 10000 + 30 \times 10000 + 24$

= 200 + 4000 + 60000 + 300000 + 24

= 3,64,224

आर्यभट्ट ने ख्रिच्युभ के द्वारा एक युग में पृथ्वी के भगणों की संख्या 3,64,224 बतायी है।

- कुज(मंगल) भगण = भद्लिझ्नुखृ

भद्लिझ्नुखृ =भ+ (द+इ)+ (ल+इ) + (झ+उ) + (न+उ) + (ख+ऋ)

$= 24 + 18 \times 10^2 + 50 \times 10^2 + 9 \times 10^4 + 2 \times 10^6$

$= 24 + 18 \times 100 + 50 \times 100 + 9 \times 10000 + 2 \times 1000000$

$= 24 + 1800 + 5000 + 90000 + 2000000$

= 22,96,824

आर्यभट्ट ने भद्लिङ्नुखृ के द्वारा एक युग में पृथ्वी के भगणों की संख्या 22,96,824 बतायी है।

- बुध भगण = 43,20,000
- शुक्र भगण = 43,20,000

आर्यभट्ट ने उपर्युक्त दोनों ग्रहों की संख्या सूर्य के भगण की संख्या के समान है अर्थात् 43,20,000 है।

महर्षिसान्दीपनिराष्ट्रियवेदविद्याप्रतिष्ठानम्, उज्जयिनी
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

अध्याय : 08
लीलावती गणित

मंगलाचरण, संख्या स्थान संज्ञा, संकलन एवं व्यवकलन।

आदिकाल से ही समस्त विद्याओं में गणित विद्या अपना एक स्वतंत्र तथा प्रतिष्ठित स्थान धारण करती हुई आती है। छान्दोग्य उपनिषद् में 'राशि विद्या' के नाम से अंकगणित का निर्देश किया गया है। सनत्कुमार के पूछने पर नारद जी ने अपनी अधीत विद्याओं की जो सूची दी है उसमें नक्षत्र विद्या के साथ राशिविद्या का भी महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। अध्यात्मविद्या के जानने वालों के लिए गणित तथा ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त करना इन विद्याओं के आपेक्षिक महत्व की स्पष्ट सूचना है।

गणितशास्त्र को समझना असम्भव ही है। संख्या और संख्येय यह दो भिन्न-भिन्न है। जैसे राम' इस पद से 'राम' नाम के व्यक्ति का बोध होता है। 'राम यहाँ आओ' इस वाक्य से राम व्यक्ति हमारे पास आता है, न कि राम यह पद। वैसे ही 1, 2, 3 इत्यादि पदार्थों की निर्मिति हुई। उन स्थानों को एक, दश, शत इस प्रकार सम्बोधित किया गया।

अंकशास्त्र में जिस प्रकार गणना रीति दिखती है, वेद में भी इसी प्रकार गणना रीति को देखा गया है। तैत्तिरीय संहिता ((7/2/20के उल्लेखित मन्त्र में **दाशमिक पद्धति की सूची का प्रमाण** मिलता है ।**शताय स्वाहा सहस्राय स्वाहाऽयुताय स्वाहा नियुताय स्वाहा प्रयुताय स्वाहा-ऽर्बुदाय स्वाहा न्यर्बुदाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा मध्याय स्वाहाऽन्ताय स्वाहा परार्धाय स्वाहोषसे स्वाहा व्युष्टै स्वाहोदेष्यते स्वाहोद्यते स्वाहोदिताय स्वाहा सुवर्गाय स्वाहा लोकाय स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा।** तैत्तिरीय संहिता के अतिरिक्त यजुर्वेद ,(17/2)लीलावती (1.2) एवं पुनः तैत्तिरीय संहिता (4/4/41) में संख्याओं के बारे में उल्लेख है। इस प्रकार हम समझ सकते है कि गणना रीति का मूल आधार अपौरुषेय वेद संहिता है।

यद्यपि अंकों की गिनती 1, 2, 3, ... यहाँ से आरम्भ होकर परार्ध पर्यन्त व्यवहार के लिए है। परन्तु संख्यायें 0, 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9 ऐसी होनी चाहिये, क्योंकि 0 को बिना जाने दश, शत

आदि स्थानों का ज्ञान असम्भव है। तात्पर्य यह है कि गिनती के लिए 1, 2, 3 इस प्रकार संख्याओं को जानकर मूलभूत 0 से 9 तक अंकों को समझना चाहिये। इस विषय का चिन्तन सभी छात्र करेंगे यह आशा है।

मंगलाचरण :

लीलावती पाटीगणित का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है। भास्कराचार्य काव्यकला में निष्णात पण्डित थे। वे रुखे-सूखे खूसट ज्योतिष न थे, फलतः उनके उदाहरणों में कवि सुलभ कोमल शब्द विन्यास है। यह पाटीगणित तथा क्षेत्रमिति (मेन्सुरेशन) का सम्मिलित ग्रन्थ है। भास्कर ने क्षेत्र व्यवहार को अंकगणित के भीतर ही समाविष्ट किया है। आजकल यह रेखागणित के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलमाचरणीयम्' इस परम्परा के अनुसार आचार्य भास्कर ने लीलावती में नमस्कारात्मक मंगलाचरण के द्वारा अपने लीलावती में ग्रन्थ का आरम्भ किया है। मंगलाचरण का उद्देश्य निर्विघ्न ग्रन्थ की परिसमाप्ति है। जैसा कि शास्त्रीय विधान है-'**विघ्नविघाताय स्यान्मङ्गलम्**' शास्त्र में तीन प्रकार के मंगल का विधान है- आर्शीवादात्मक, नमस्कारात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक। जिसका लक्षण है- '**आर्शीनमस्क्रिया वस्तुनिर्देषो वापि तन्मुखम्।**'

आचार्य भास्कर ने लीलावती ग्रन्थ में मंगलाचरण में श्री गणेश जी स्तुति कि है-

लीलागललुलल्लोलकालव्यालविलासिने।
गणेशाय नमो नीलकमलामलकान्तये ॥

अर्थात् लीला से गले में लिपटे हुए चंचल सर्प से सुशोभित एवं नीलकमल के सदृश निर्मलकान्ति वाले गणेश जी को नमस्कार है।

भाव: शिवजी के गोदी में बैठे गणेश जी कालसर्प से खेलते हुए, नीलकमल के समान कान्ति वाले हैं उनको मै नमन करता हूँ। भास्काराचार्य की माधुर्यता एवं सुन्दरता से परिपूर्ण शैली इस श्लोक से स्पष्ट होती है।

लीलावती ग्रन्थ में 'लीलागलेति' यह द्वारा मंगलाचरण के रूप में दिखता है।

प्रीतिं भक्तजनस्य यो जनयते विघ्नं विनिघ्नन् स्मृतम्। तं वृन्दारकवृन्दवन्दितपदं नत्वा मतङ्गाननम्। पाटीं सद्गणितस्य वच्मि चतुरप्रीतिप्रदां प्रस्फुटाम्। संक्षिप्ताक्षरकोमलामलपदैर्लालित्यलीलावतीम्।

उक्त मंगल श्लोक से ग्रन्थारम्भ करके परिभाषा को बताया गया है। परिभाषा के पश्चात् पुनः मंगल श्लोक का क्या प्रयोजन है। इस शंका का समाधान यह है कि **'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थाते च मंगलमाचरणीयम्'** से इस शिष्टाचार का पालन करने हेतु यह प्रथम समाधान और मंगल श्लोक का परिभाषा लेखन कार्य हुआ विषयान्तर होने से पुनः गणित विषय का प्रतिपादन करने हेतु द्वितीय 2 मंगल श्लोक को लिखकर ग्रन्थकार ने ग्रन्थ का लेखन किया होगा, यह द्वितीय समाधान है।

संख्या स्थान संज्ञा :

संख्या के स्थान मान की संज्ञा विश्व के सर्वप्रथम वाङ्मय, वेद संहिताओं के कई मन्त्रों में उल्लेख मिलता है।

एकदशशतसहस्त्रायुतलक्षप्रयुतकोटयः क्रमशः।
अर्बुदमब्ज खर्वनिखर्वमहापद्मशङ्कवस्तस्मात्॥
जलधिश्चान्त्यं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहरार्थं कृता पूर्वैः॥ **(लीलावती गणित, 2-3)**

उक्त श्लोक में दशगुणित स्थानों की उत्तरोत्तर संज्ञा का स्पष्ट उल्लेख हैं जो पूर्वाचार्य ने व्यवहार के लिए बताई है।

तै.सं. मन्त्रानुसार	यजुर्वेद मन्त्रानुसार	लीलावती गणित	वर्तमान में प्रचलित	संख्या (अंकों में)	शून्य
....	एक	एक	इकाई	1	0
....	दश	दश	दहाई	10	1
शत	शत	शत	सैकड़ा	100	2
सहस्र	सहस्र	सहस्र	हजार	1,000	3
अयुत	अयुत	अयुत	दस हजार	10,000	4
नियुत	नियुत	लक्ष	लाख	1,00,000	5
प्रयुत	प्रयुत	प्रयुत	दस लाख	10,00,000	6

अर्बुद	अर्बुद	कोटि	करोड़	1,00,00,000	7
न्यर्बुद	न्यर्बुद	अर्बुद	दस करोड़	10,00,00,000	8
समुद्र	समुद्र	अब्ज	अरब	1,00,00,00,000	9
मध्य	मध्य	खर्व	दस अरब	10,00,00,00,000	10
अन्त	अन्त	निखर्व	खरब	1,00,00,00,00,000	11
परार्ध	परार्ध	महापद्म	दस खरब	10,00,00,00,00,000	12
उषस्	……….	शंकु	नील	1,00,00,00,00,00,000	13
व्युष्टि	……….	जलधि	दस नील	10,00,00,00,00,00,000	14
उदेष्यत्	……….	अन्त्य	पद्म	1,00,00,00,00,00,00,000	15
उद्यत्	……….	मध्य	दस पद्म	10,00,00,00,00,00,00,000	16
उदित	……….	परार्ध	शंख	1,00,00,00,00,00,00,00,000	17
सुवर्ग	……….	……….	दस शंख	10,00,00,00,00,00,00,00,000	18
लोक	……….	……….	………..	1,00,00,00,00,00,00,00,00,000	19
सर्व	……….	……….	………..	अनन्त	……

संकलन एवं व्यवकलन:

लीलावती गणित में जोड़ एवं घटाव की अवधारणा को संकलित एवं व्यवकलित के नाम से जाना जाता है। जिसमें अंकगणित क माध्यम से गणित के मूलभूत सिद्धांतों जोड़ एवं घटाना को ग्रन्थकार ने स्पष्ट करते हुए लिखा है। गणित विषयक विचारों को ग्रन्धकार ने सरस काव्य का रूप दिया है।

इस इकाई में संकलित (जोड) एवं व्यवकलित (घटाव) प्रकरण को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह लीलावती ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण अभिन्नपरिकर्माष्टकम् (योग, वियोग, गुणन, भाग, वर्ग,

वर्गमूल, घन और घनमूल) से सम्बन्धित है। इस प्रकरण में अभिन्न अर्थात् पूर्ण संख्याओं की गणितीय आठ प्रक्रियाओं को विस्तार से स्पष्ट किया गया है। जिनका व्यावहारिक जीवन में कुशलता प्राप्त करने के लिए अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

लीलावती, प्रसिद्ध गणितज्ञ भास्कराचार्य की पुत्री का नाम था। इस लीलावती ग्रन्थ में पाटीगणित (अंकगणित), बीजगणित और ज्यामिति के प्रश्न उत्तर हैं। प्रश्न प्रायः लीलावती को सम्बोधित करके पूछे गये है। किसी गणितीय विषय प्रकरणसूत्र की चर्चा करने के बाद लीलावती से एक प्रश्न पूछते हैं।

संकलितव्यवकलितयो करणसूत्रम् : आचार्य भास्कराचार्य ने लीलावती गणित में संकलित (जोड़) और व्यवकलित (घटाव) करने की रीति को आधे श्लोक में सूत्रबद्ध किया है:"

कार्यः क्रमादुत्क्रमतोऽथ वाऽङ्कयोगो यथास्थानकमन्तरं वा।

अर्थात् क्रम के रीति से उत्क्रम की रीति से यथास्थान में अर्थात् एकस्थानी अंक में, एकस्थानी अंक का दशस्थानी अंक में, दशस्थानी अंक का शतस्थानी अंक में शतस्थानी अंक का जोड अथवा घटाव करना चाहिए।

भाव: निश्चित क्रम (एक स्थान से परार्ध पर्यन्त) अथवा विपरीत क्रम(परार्ध स्थान से एक पर्यन्त)से यथा स्थानस्थित अकों अर्थात् एक स्थानीय अंकों के साथ नीचे एक स्थानीय अंकों को रखना चाहिए और दशस्थानीय अंकों के साथ नीचे दशस्थानीय अंकों को रखना चाहिए तथा शतस्थानीय अंकों के नीचे शतस्थानीय अंकों को रखकर समस्थानीय अंकों का योग अथवा व्यवकलन करना चाहिए।

संकलन की स्पष्टता: संख्याओं के की दो प्रकार की विधि प्रचलित थी। एक का नाम थ क्रमविधि और दूसरे का नाम उत्क्रम विधि। पहले में इकाई के स्थान से जोड़ प्रारम् किया जाता था (दक्षिण से वाम की ओर) दूसरे प्रकार की विधि में अन्तिम स्थान से जोड प्रारम्भ किया जाता था (वाम से दक्षिण की ओर)। आजकल क्रम पद्धति का प्रयोग हम लोग करते है।

लीलावती से संकलित के बारे में भास्कराचार्य से निम्न उदाहरण प्रश्न किया है-

अये बाले लीलावति मतिमति ब्रूहि सहितान् द्विपञ्चद्वात्रिंशत्त्रिनवतिशताष्टादश दश।
शतोपेतानेतानयुतवियुतांश्चापि वद मे यदि व्यक्ते युक्तिव्यवकलनमार्गेऽसि कुशला ॥

हे बाले, बुद्धिमति, लीलावति ! यदि पाटीगणित के योग और घटाव को तुम अच्छी तरह जानती हो, तो 2, 5, 32, 193, 18, 10, एवं 100 को जोड़कर प्राप्त योगफल को 10000 में घटाने पर शेष क्या रहेगा बताओ।

हल: दी गई संख्याओं का योगफल = 2 + 5 + 32 + 193 + 18 + 10 + 100

= 360

प्राप्त योगफल को 10000 में से घटाने पर = 10000 – 360

= 9640

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर को चयन करें ।

अ. संकलित एवं व्यवकलित का वर्णन किस ग्रन्थ में प्राप्त होता है? (लीलावती भाग-3/ लीलावती भाग-1)

ब. संकलित का अर्थ क्या है? (जोड / घटाव)

स. व्यवकलित का अर्थ क्या है? (जोड़ / घटाव)

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

अ. संकलित का अर्थ .... है। (जोड/ घटाव)

ब. व्यवकलित का अर्थ .... है। (जोड़ / घटाव)

स. क्रम का अर्थ .... हैं। (एक स्थान से परार्ध पर्यन्त/ परार्ध से एक पर्यन्त)

द. उत्क्रम का अर्थ .... है। (एक स्थान से परार्ध पर्यन्त / परार्ध से एक पर्यन्त)

3 योगफल ज्ञात करें।

अ)	ब)	स)	द)
183	94	168	496
+ 907	+ 95	+ 405	+ 793

प) 73	फ) 403	भ) 786	म) 315
+ 74	+ 624	+ 544	+ 894

य) 372	र) 288	ल) 716	म) 467
+ 612	+ 583	+ 351	+ 712

4. व्यवकलन करें।

अ) 983	ब) 94	स) 668	द) 896
- 407	- 55	- 405	- 793

प) 93	फ) 603	भ) 786	म) 915
- 74	- 524	- 544	- 394

य) 872	र) 988	ल) 736	म) 867
- 612	- 583	- 351	- 112

राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालयों
वेद पाठशालाएँ तथा गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयाँ

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

Vedavidya Marg, Chintaman Ganesh, Post. Jawasia, Ujjain 456006 (M.P.)

दूरभाष/Phone : (0734) 2502255, 2502254

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, Website - www.msrvvp.ac.in